

# भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 25

संयुक्तांक 1-2

जुलाई-अक्टूबर 2006

## इस अंक में

|  |   |     |
|--|---|-----|
| संपादकीय   |   | 3   |
| शिक्षक   | – अनु बंधोपाध्याय                                 | 5   |
| तालीम की ज़मीन   | – संध्या सिंह                                     | 11  |
| लोकतंत्र एवं शिक्षा  | – गोपाल प्रसाद नायक                               | 15  |
| रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिंतन की आधुनिकता   | – अनूप कुमार                                      | 25  |
| उच्च शिक्षा में महिलाएँ – एक विश्लेषण  | – रश्मि श्रीवास्तव                                | 31  |
| अध्यापक के पर्याय  | – ऋतु भारद्वाज                                    | 36  |
| कक्षा में पुतलियाँ और बच्चे  | – राजेश कुमार निमेश                               | 49  |
| मानवाधिकारों की शिक्षा और भिन्न योग्यता के विद्यार्थी  | – सुजाता साहा                                     | 57  |
| एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक गतिविधियों तथा मूल्यांकन प्रणाली की उपादेयता का अध्ययन | – रीना सिंह एवं पी.के.साहू                        | 64  |
| सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का अध्ययन                               | – राजेश कुमार सिंह एवं<br>राजेन्द्र कुमार जायसवाल | 75  |
| पाठ्यपुस्तक जीवन की समझ पैदा करती हैं  | – स्नेहलता प्रसाद                                 | 86  |
| ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध शिक्षा सुविधाएँ   | – मंजू त्रैहन एवं संदीप कुमार शर्मा               | 92  |
| उच्च शिक्षा में स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थानों की व्यवहारिक उपादेयता   | – अशोक कुमार दुबे                                 | 102 |
| प्राथमिक विद्यालयों में छात्र-अध्यापक अनुपात   | – भगवतशरण बुड़ाकोटी                               | 114 |
| वैकल्पिक शिक्षा की दुविधा  | – शंकर शरण  | 117 |
| अंत में  | – कृष्ण कुमार                                     | 124 |

## शिक्षक\*

अनु बंधोपध्याय\*

---

महात्मा गाँधी को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। वर्तमान पीढ़ी, जिन्होंने उन्हें देखा नहीं है, वे सोचते होंगे कि वह कोई असाधारण या अलौकिक व्यक्ति था जिसने बड़े-बड़े काम किये और हमें आज्ञा दी दिलाई। निःसंदेह वह एक असाधारण व्यक्तित्व के मालिक थे। गाँधी जी राजनैतिक कार्यों के साथ-साथ जीवन में हर छोटे से छोटे कार्य को खुशी से करते थे चाहे वह कार्य कपड़े धोने या सिलने का हो, सफाई करने का हो, खाना बनाने या परोसने का हो, कपड़ा बुनने या सूत कातने का हो, पढ़ाने का हो, लिखने का हो अथवा कोर्ट-कचहरी में जिरह करने का हो। प्रस्तुत लेख छोटे छोटे उदाहरणों के जरिये हमें उनके शिक्षक रूप से रूबरू कराता है।

---

गांधी की पहली छात्रा कस्तूरबा थीं। गांधी का विवाह 13 वर्ष की उम्र में हुआ था, जब वह स्कूल में पढ़ते थे, किंतु उनकी पत्नी निरक्षर थीं। गांधी ने कस्तूरबा को रात को एकांत में पढ़ाना चाहा क्योंकि उस ज़माने में पुराने-चाल के घरों में सबके सामने पत्नी से बोलने का रिवाज नहीं था। किंतु तब कस्तूरबा की रुचि लिखने-पढ़ने में तनिक भी नहीं थी। अतः शिक्षक बनने का गांधी का यह प्रयत्न सफल न हो सका। फिर 73 वर्ष की उम्र में आगा खाँ महल में कैद के समय गांधी को कुछ अवकाज मिला और उन्होंने कस्तूरबा को फिर पढ़ाना आरंभ

किया। बा के पढ़ने के लिए उन्होंने रामायण और महाभारत के कुछ भागों का संकलन किया और उन्हें गुजरात साहित्य, व्याकरण और भूगोल पढ़ाना शुरू किया। किंतु बीमारी और बुढ़ाई की मारी बा कुछ प्रगति न कर सकीं।

विलायत से बैरिस्टर होकर लौट आने के बाद गांधी पर अपने परिवार के बालकों को व्यायाम और साहबी ढंग का रहन-सहन सिखाने की सनक सवार हो गई थी। बच्चे उनकी ओर अनायास ही आकृष्ट हो जाते हैं, यह देखकर उनकी यह धारणा बन गई थी कि मैं बहुत अच्छा शिक्षक हो सकता हूँ।

---

\*प्रस्तुत लेख अनु बंधोपध्याय द्वारा लिखित पुस्तक 'बहुरूप गांधी' से लिया गया है। इस पुस्तक को एनसीईआरटी द्वारा सन 2006 में पुनर्मुद्रित किया गया है।

उनके शिक्षा के सिद्धांत और ढंग भी मौलिक होते थे। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने के लिए तैयार हो गए। उनको तीन छात्र मिले—एक मुसलमान हज़ाम, एक कारकुन और एक हिंदू दुकानदार। वे अंग्रेज़ी सीखने को बहुत उत्सुक थे, किंतु अपना धंधा छोड़कर नहीं आ पाते थे। गांधी प्रतिदिन चार मील पैदल जाकर खुद उन्हें पढ़ाया करते थे।

बिना फ़ीस लिए आठ महीने तक मास्टरी करके उन्होंने अपने छात्रों को काम-चलाऊ अंग्रेज़ी सिखा दी थी। गांधी चलती-फिरती कक्षा भी लगाया करते थे। अपने छोटे-छोटे लड़कों को घर पढ़ाने के लिए गांधी समय नहीं निकाल पाते थे, इसलिए दफ्तर जाते समय बच्चे अपने बापू के साथ हो लेते थे।

वे प्रतिदिन पाँच मील पैदल चलते-चलते कहानी के रूप में गुजराती साहित्य, कविता और अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त किया करते थे। बच्चों को स्कूल भेजने के सवाल पर झंझट उठ खड़ा हुआ था। अंग्रेज़ों के स्कूल में भारतीय बच्चों को दाखिला नहीं मिलता था। गांधी को विशेष छूट मिल सकती थी। किंतु जो छूट उनके सब भारतीय भाइयों को न मिले, उन्होंने ऐसी सुविधा नहीं ली। गांधी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत नहीं सिखाना चाहते थे। कुछ दिनों के लिए एक अंग्रेज़ महिला ने उनके बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाई और बाकी विषय उन्होंने खुद पढ़ाए। अपने घर में रहने वाले अंग्रेज़ मित्रों तथा आने-जाने वालों के संपर्क में उनके बच्चों ने अंग्रेज़ी बोलने का अच्छा अभ्यास कर लिया था।

फ़िनिक्स में गांधी ने आश्रमवासियों के बच्चों के लिए एक पाठशाला खोली। गांधी स्वयं उसके प्रधान शिक्षक थे और अन्य साथी सहशिक्षक। गांधी जो काम स्वयं नहीं कर पाते थे उसे दूसरों को करने का उपदेश नहीं देते थे। उनकी मान्यता थी कि जो शिक्षक स्वयं भीरू और अनियमित होगा वह विद्यार्थियों को साहस और नियम पालन नहीं सिखा पाएगा। शिक्षक को अपने विद्यार्थियों के समक्ष आदर्श रूप में होना चाहिए। उन्हें जब भी समय मिलता, वह बहुत कुछ पढ़ डालते और कोई नई बात सीख लेते थे। पैंसठ साल की आयु में जेल में रहते हुए उन्होंने पहली बार आकाश में ग्रह-नक्षत्रों को पहचानना सीखा था। आश्रमवासी विद्यार्थी सभी धर्मावलंबी थे। शिक्षकों में भी अंग्रेज़, जर्मन और भारतीय थे। शिक्षकगण आश्रम में खेती बाड़ी आदि करने में इतने व्यस्त रहते थे कि कभी-कभी सीधे खेत से लौटकर पैरों में कीचड़ लपेटे कक्षा में चले आते। कभी-कभी छोटे बच्चे को गोद में लेकर पढ़ाया करते थे। फ़िनिक्स आश्रम में चाय, कोको और कॉफ़ी पीने की मनाही थी, क्योंकि मालिक इनकी खेती गुलाम मज़दूरों से कराते थे। स्वास्थ्य और सबलता के लिए टेनिस आदि खेलों के बजाए उन्होंने दैनिक शारीरिक श्रम करने का नियम बनाया था। गांधी का विश्वास था कि बचपन में दस जने मिलकर यदि खेल के बहाने काम करने का अभ्यास कर लें तो आगे चलकर खेल खेल में वे बड़ा काम कर सकते हैं।

पुस्तकें रटने के बजाए बच्चों को सच्चरित्र बनाना अधिक आवश्यक है, यह मानकर गांधी उनके चाल-चलन और मन के विकास पर अधिक ध्यान देते थे। गांधी इसको भूले नहीं थे कि अपनी छात्रावस्था में मजबूरन बहुत-सी पुस्तकों की रटाई के कारण पढ़ाई कैसी नीरस हो गई थी। इसलिए वे कभी पुस्तक लेकर नहीं पढ़ाते थे। वह किताबी रटाई से विद्यार्थियों की बुद्धि के स्वाभाविक विकास को कुंठित नहीं करना चाहते थे। वह चाहते थे कि पढ़ाई विद्यार्थियों को भार न लगे, बल्कि उन्हें आनंद दे। महज लिखना-पढ़ना और हिसाब लगाना सीख जाने को या किताबी ज्ञान प्राप्त कर लेने को वह शिक्षा नहीं मानते थे।

गांधी बराबर यह कोशिश करते थे कि बच्चे सभी धर्मों का आदर करें। रमजान के महीने में मुसलमान लड़कों के साथ हिंदू विद्यार्थी भी रोज़े रखा करते थे। मुसलमान विद्यार्थी कभी-कभी हिंदू परिवारों में रहते और उन्हीं के साथ भोजन किया करते थे। वे सभी शाकाहारी थे। सभी एक ही जगह बैठकर एक ही प्रार्थना करते थे। सभी विद्यार्थियों को माली, भंगी, चमार, बढ़ई और रसोइए का काम सीखना पड़ता था। विद्यार्थियों के मन में कहीं जाति, धर्म और किसी काम को छोटा या बड़ा समझने का भाव न पैदा हो, इसलिए गांधी सभी बच्चों को इकट्ठा करके गीता पाठ से लेकर जूतों की सिलाई तक खुद सिखाते थे।

टालस्टाय बाड़ी और साबरमती आश्रम में गांधी बच्चों को जूते गाँठना सिखाते थे। सब

बालक अपनी-अपनी मातृभाषा की पुस्तकें पढ़ते थे, टालस्टाय आश्रम में प्राथमिक विद्यार्थियों को गांधी तमिल और उर्दू पढ़ाया करते थे। वह खुद भी गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिंदी, उर्दू, तमिल, बांग्ला, अंग्रेज़ी, लैटिन और फ्रेंच जानते थे। विद्यार्थियों को हिंदी, उर्दू, तमिल और गुजराती पढ़ाई जाती थी। प्रतिदिन शाम को कीर्तन होता था और पियानों पर मसीही भजन गाए जाते थे।

साबरमती आश्रम में भी यही शिक्षा-पद्धति अपनाई गई। विद्यार्थियों से किसी तरह की फ़ीस नहीं ली जाती थी। विद्यार्थियों के अभिभावक, स्वेच्छा से आश्रम के कोश में दान देते थे। चार वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को आश्रम में ही रहना पड़ता था। बालकों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से इतिहास, भूगोल, गणित और अर्थशास्त्र पढ़ाया जाता था। संस्कृत, हिंदी और दक्षिण भारत की एक भाषा की शिक्षा अनिवार्य थी। उर्दू, बंगला, तेलुगु और तमिल भाषा का अक्षर-परिचय कराया जाता था तथा अंग्रेज़ी ऐच्छिक विषय था। विद्यार्थियों को दिन में तीन बार बहुत ही सादा बिना मिर्च-मसाले का भी भोजन दिया जाता था और सादी-मोटी पोषाक पहननी पड़ती थी। स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार पर जोर दिया जाता था।

गांधी बालक-बालिकाओं की सह-शिक्षा के समर्थक थे और वह कहते थे कि

“मैं लड़कियों को सात तालों में बंद करके रखने में विश्वास नहीं करता। लड़के-लड़कियों को साथ पढ़ने और मिलने-जुलने का मौका देना चाहिए।”

आश्रम में यदि कभी लड़के-लड़कियों में कोई अनुचित व्यवहार की घटना होती तो गांधी प्रायश्चित्त के रूप में स्वयं उपवास करते थे।

आश्रम में कताई के साथ-साथ पिंजाई-धुनाई भी सिखाई जाती थी। छोटे-छोटे बालकों को कोई ऐसी दस्तकारी सिखाई जाती, जिससे उनकी पढ़ाई का कुछ खर्च निकल आए। छुट्टी का कोई दिन नहीं था, किंतु अपना काम करने के लिए छात्रों को सप्ताह में दो दिन में कुछ समय मिला करता था। जो विद्यार्थी मजबूत होते थे, वे वर्ष में तीन महीने के लिए पैदल घूमने के लिए निकलते थे। गुजरात विद्यापीठ में गांधी बालकों को बाइबिल की कहानियाँ सुनाया करते थे और अंग्रेजी साहित्य के चुने हुए अंश पढ़ाया करते थे।

गांधी जी प्रचलित शिक्षा-पद्धति को बिलकुल बदल देना चाहते थे। वह इसे केवल मध्यवर्त घरों के बच्चों के लिए ही नहीं, बल्कि देश के करोड़ों सामान्य लोगों के लिए उपयोगी बनाना चाहते थे। उन्होंने अपने लड़कों को किसी स्कूल या कॉलेज में नहीं पढ़ाया। गांधी अपने बच्चों को ऐसी महँगी शिक्षा नहीं देना चाहते थे जो सर्वसाधारण के लिए उपयोगी न हो। इस कारण उनके लड़के और उनकी माँ मन-ही-मन दुखी रहते थे। गांधी ने अच्छी तरह जाँच लिया कि एक विदेशी भाषा सीखने में लड़के-लड़कियों का कितना समय नष्ट होता है, उन्हें कितनी मेहनत करनी पड़ती है और वे किस प्रकार धीरे-धीरे अपनी भाषा तथा साहित्य से उदासीन हो जाते हैं। विदेशी भाषा में विदेशी शिक्षा पाकर

अपने ही घर में वे परदेशी हो जाते हैं। ऊँची शिक्षा से भी विद्यार्थियों में आत्मविश्वास नहीं आ पाता और वे यह तय नहीं कर पाते कि पढ़ाई खत्म कर लेने के बाद क्या करें। गांधी चाहते थे कि देश की उच्च शिक्षा ऐसी हो जिसमें देश के अनेक वर्गों की परंपराओं और संस्कृतियों का मेल हो तथा नई दुनिया का ज्ञान भी हो।

गांधी बच्चों को लिखने के पहले पढ़ना सिखाने के पक्ष में थे। वह चाहते थे कि बच्चों के अक्षर बहुत सुंदर बनें। उनकी अपनी लिखावट बहुत खराब थी, इस पर उनको बड़ी शर्म लगती थी। गांधी कहते थे कि बच्चों को पहले सरल रेखा, वक्र रेखा और त्रिभुज खींचना और पक्षी, फूल-पत्ते आदि आँकना सिखाना चाहिए। इससे उन्हें अक्षरों पर कलम फेरने की जरूरत नहीं पड़ेगी और वे सीधे सुडौल अक्षर बनाना ही सीखेंगे।

प्रचलित शिक्षा-पद्धति उनकी दृष्टि में केवल तमाशा भर थी। इस शिक्षा से गाँव के बच्चों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती। गांधी चाहते थे कि बच्चों की शारीरिक और मानसिक शक्ति का विकास हो और वे किताबी कीड़ा न बनें।

करीब तीस वर्ष के चिंतन के बाद गांधी ने दस्तकारी के जरिए शिक्षा देने की 'बुनियादी तालीम' पद्धति निकाली। 63 वर्ष की अवस्था में, कारावास के समय उन्होंने जिस शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की थी, वही बाद में नई तालीम या वर्धा शिक्षा-पद्धति के नाम से प्रचलित हुई।

गांधी विद्यार्थियों को मारने-पीटने या शारीरिक दंड देने के विरोधी थे। एक बार क्रोध में आकर

वह एक शरारती विद्यार्थी को रूल से मार बैठे, किंतु इस प्रकार क्रोध आ जाने पर उन्हें बहुत दुख हुआ। उस विद्यार्थी को भी प्रहार से उतना दुख नहीं हुआ जितना इस बात से कि उसके कारण बापू को मानसिक कष्ट हुआ। उसने बापू से माफी माँगी। शारीरिक दंड देने का गांधी के जीवन में यही और अंतिम अवसर था। वह विद्यार्थियों को खेलकूद में एक-दूसरे से होड़ करने के लिए खूब बढ़ावा देते थे किंतु पढ़ाई में दूसरों को हराने के लिए वह कभी उत्साहित नहीं करते थे। उनका नंबर देने का तरीका भी विचित्र था। वह सबसे अच्छे लड़के के काम से अन्य लड़कों की तुलना नहीं करते थे। अगर विद्यार्थी ने अपनी पढ़ाई-लिखाई में तरक्की की तो उसे अधिक नंबर देते थे। गांधी विद्यार्थियों पर पूरा विश्वास करते थे और परीक्षा के समय उनकी निगरानी के लिए वहाँ किसी को नियुक्त नहीं करते थे। आश्रमिक शिक्षा का मूल उद्देश्य था बच्चे में स्वतंत्रता का भाव जगाना। गांधी कहते थे कि छोटे-से-छोटा बच्चा भी समझ ले कि मैं भी कुछ हूँ।

गांधी भारत के हर गाँव में बुनियादी विद्यालय खोलना चाहते थे। किंतु उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि शिक्षक अगर स्वावलंबी नहीं होंगे तो इस गरीब मुल्क के गाँव-गाँव में विद्यालय खोलना संभव नहीं है। इसलिए बुनियादी विद्यालय के विद्यार्थियों को कोई दस्तकारी-साधारणतः कताई सीखनी पड़ती थी। गांधी जरूरी मानते थे कि समाज में समानता और सच्ची शांति स्थापित करने का काम बच्चों से शुरु

करना चाहिए। वह कहते थे कि यदि विद्यार्थी पढ़-लिखकर हाथ से काम करना भूल जाएँ या हाथ से काम करने में शर्माएँ तो ऐसी शिक्षा से अनपढ़ रहकर पत्थर तोड़ना अच्छा है।

गांधी अपने नाती को कपास की खेती कैसे की जाती है, तकली की चकती कैसे बनाई जाती है, सूत से कपड़ा कैसे बुना जाता है और तार गिनकर सूत कैसे अटेरा जाता है, यह बताते हुए उसे भूगोल, सामान्य विज्ञान, गणित, ज्यामिति और सभ्यता के इतिहास की बातें भी सिखाते थे। वह कहते थे कि कताई के साथ-साथ चर्खे की बनावट, चक्के एवं नली को देखकर विद्यार्थियों को ज्यामितिक वर्ग, वृत्त, रेखाओं आदि का ज्ञान हो जाएगा और लकड़ी तथा कपास पैदावार की जानकारी के साथ ही वे विभिन्न देशों की जलवायु से परिचित हो जाएँगे और उन्हें इस प्रकार भूगोल का भी ज्ञान हो जाएगा। इस प्रकार उनके मन में जानने की उत्सुकता और कोई नई चीज़ बनाने का आनंद पैदा होगा।

गांधी ने अनेक बार छात्र-छात्राओं से बातचीत में तथा गुजरात विद्यापीठ के अपने दीक्षांत भाषण में कहा था कि मैं अच्छी नौकरी प्राप्त कर कुरसी तोड़ने के लिए शिक्षा नहीं देना चाहता। वह चाहते थे कि शिक्षार्थी राष्ट्रीय जीवन को शक्तिशाली बनाएँ तथा देश के वीर योद्धा बनें। विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि वे गाँव के किसान के सुख-दुख को समझें और उसके दुखों को दूर करने का प्रयास करें। तभी सर्वसाधारण के मन से असहायता, निराशा और कुसंस्कारों को दूर किया जा सकेगा।

रस्कन, टालस्टाय तथा रवींद्रनाथ के शिक्षा-संबंधी विचारों का प्रभाव गांधी पर पड़ा था। संसार के जिन प्रसिद्ध व्यक्तियों ने शिक्षा की समस्या का अध्ययन किया है, गांधी भी उनमें से एक हैं। उन्होंने बिहार में कई प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए तथा बंगाल में राष्ट्रीय विद्यालय और अहमदाबाद में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।

यह भी एक अजीब बात है कि शिक्षा के नए-नए सिद्धांतों को निकालने वाले इस जन्मजात शिक्षक को, अपनी युवावस्था में अर्जी देने पर 75 रुपए की मास्टरी नहीं मिल सकती थी। यद्यपि वह लंदन से मैट्रिक और बैरिस्टरी की परीक्षा पास कर चुके थे, किंतु ग्रेजुएट न होने के कारण, उनकी अर्जी मंजूर नहीं हुई थी।



## तालीम की ज़मीन

संध्या सिंह\*

भाषा तालीम की ज़मीन तैयार करती है। बहुत समय से बच्चों की शिक्षा, खासतौर से उनकी भाषा का ज़ाएजा लेने की कोशिश कम ही हुई है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद आज भी ऐसी तालीम का मसौदा नहीं बन सका जहाँ हरेक बच्चे –किसी भी जाति, धर्म और क्षेत्र के बच्चों के लिए शिक्षा आज्ञादी की ज़बान बन सके, सामाजिक चिंताएँ और सरोकार पाठ्यक्रम का हिस्सा बन सकें या फिर बच्चे अपने स्वतंत्र विचारों को अपनी भाषा दे सकें। इन सब, मुद्दों को भाषा की पढ़ाई के संदर्भ में बार-बार विचारना होगा, कुछ इस तरह कि यह सिलसिला मुहिम का रूप ले सके ताकि बच्चों की जिह्वा की अकुलाहट शब्दों में ढल सके।

पिछले दिनों हिंदी का पाठ्यक्रम और नई पाठ्यपुस्तकें तैयार करते हुए शिक्षा-खासतौर से भाषा की पढ़ाई की दरकती नींव और उसके पोलेपन को शिद्दत के साथ समझने-बूझने का मौका मिला। हमारा पूरा समाज बच्चों की शिक्षा को बड़े हल्के ढंग से लेता रहा है। यहाँ तक कि शिक्षा के बुनियादी ढाँचे को समझने या बदलने की बावत पढ़े-लिखे वर्ग या बुद्धिजीवियों ने भी कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। नतीजा यह हुआ कि देश के भावी नागरिकों की समस्याएँ भी भावी बनकर रह गईं। ऐसा क्यों हुआ कि बच्चों की पढ़ाई हमारी सोच के केंद्र में नहीं रही? दुनिया के सबसे बड़े प्रजातांत्रिक देश में

बच्चों की इतनी उपेक्षा? बच्चों के हर मुद्दे पर संवेदनशीलता दिखाने वाला देश उनकी पढ़ाई के मुद्दे पर इतना असंवेदनशील क्यों? पाठ्यक्रम निर्माण के दौरान ऐसे बहुत से बुनियादी और ज़रूरी सवाल जो आमतौर पर गैर ज़रूरी समझे जाते रहे से जूझते हुए लगा – कि संभवतः इस मुद्दे पर आज तक बहुत कुछ लिखा और बोला गया पर अब करने की बारी है इस दौरान हिंदी कवि मुक्तिबोध लगातार याद आए –

जो है उससे कुछ बेहतर चाहिए

दुनिया को साफ़ करने के लिए एक मेहतर चाहिए

और वह मेहतर मैं हो नहीं पाता

\*रीडर (हिंदी), भाषा विभाग, एनसीईआरटी, नई दिल्ली



वह मेहतर हमें होना होगा। आज सूचना-क्रांति का समय है। यहाँ तक कि हमारे समाज में आज भावनाएँ भी एक सूचना मात्र बनकर रह गई हैं। (हाल के गुड़िया प्रकरण या इसी तरह की अन्य खबरों को याद कीजिए) ऐसे में बोझ रहित और अरुचिकर शिक्षा की बात करना एक चुनौती बन गई। भाषा-साहित्य की पढ़ाई के लिए यह चुनौती कुछ अधिक बड़ी थी, क्योंकि भाषा बच्चे की शिक्षा के लिए ज़मीन का काम करती है और साहित्य इस ज़मीन की सिंचाई का प्रमुख साधन है। दुर्भाग्य से इस ज़मीन का जाएजा लेने की कोशिश कम ही हुई है। ऐसे में नयी पाठ्यपुस्तकों की परिकल्पना के लिए ज़मीन बनाने का काम अभी भी बाकी है। पुस्तकों को तैयार करते समय इस मुद्दे पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया कि बच्चों को खुद-ब-खुद पढ़ने का चस्का लग जाए, किताब ऐसी हो। एक ओर शिक्षा बिना बोझ के जैसी अवधारणा थी तो दूसरी ओर ज्ञानकारी का लहराता अपार समुद्र। किनारा बहुत दूर था, किताबें बनी लेकिन अगला कदम कुछ अधिक मुश्किल था। समय के तेजी से बदलने का एहसास साथ था, यह दुनिया हर क्षण नई हो रही है, भाषा हर पल नया-नया रूप ले रही है-यह भी एहसास था, तो फिर इन तमाम बदलावों के साथ-कदम बढ़ाते बच्चों के हाथों में एक नई किताब क्यों नहीं?

इसी जज़्बे को लिए नई पाठ्यपुस्तकों के साथ शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों और टेलीकांफ्रेंसिंग के जरिये जब अध्यापकों से जुड़ने का अवसर मिला तो उनकी आँखों में नएपन की चमक तो

थी पर ज़बान पर कुछ सवाल थे जो घूम फिरकर लगभग हर ऐसे कार्यक्रमों में उठते रहे। बार-बार नई किताब क्यों? तरह-तरह की हिंदी क्यों? अलग-अलग ज़वाबों वाले सवाल क्यों? वगैरह।

मुझे गांधी जी की कही एक बात याद आ रही है जो उन्होंने आज़ाद भारत के विद्यार्थियों के लिए कही थी। वर्धा में नयी तालीम या बुनियादी शिक्षा का मसौदा बन रहा था तो वहाँ जाकर हुसैन साहब, के.टी. शाह, कृपलानी, आशादेवी आदि अनेक लोग मौजूद थे।

बापू ने पूछा, “के.टी. अपने बच्चों के लिए कैसी शिक्षा तैयार कर रहे हो?”

सब चुप थे।

के.टी. ने कहा-“बापू आप ही बताइए न, कैसी शिक्षा हो?”

बापू का जवाब था-“के.टी., अगर मैं किसी कक्षा में जाकर यह पूछूँ कि मैंने एक सेब चार आने में खरीदा और उसे एक रुपये में बेच दिया तो मुझे क्या मिलेगा? मेरे इस प्रश्न के जवाब में अगर पूरी कक्षा यह कह दे कि आपको जेल की सज़ा मिलेगी तो मानूँगा कि यह आज़ाद भारत के बच्चों की सोच के मुताबिक शिक्षा है”।

गांधी जी के इस सवाल पर सभी दंग थे। शिक्षा के क्षेत्र में जब तक ऐसे माहौल का निर्माण नहीं होता कि देश का हर बच्चा ऐसे सवाल उठाने का साहस कर सके तब तक हमें बार-बार जरूरत होगी ऐसे नए पाठ्यक्रम की और नयी पाठ्यपुस्तकों की जो देश के हर कोने, हर क्षेत्र, हर वर्ग, हर जाति, हर धर्म के बच्चे के मन में ऐसे सवाल उठाने का साहस भर सके।

शिक्षा के उद्देश्य व्यापक होने चाहिए जिनमें, “विचार और काम की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नयी स्थितियों का लचीलापन और रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक प्रक्रियाओं तक सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता” (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005) प्रमुख हैं। जाहिर है ये उद्देश्य कमोबेश हर नए पाठ्यक्रम के मूल में रहे होंगे तो फिर नया क्या है? वह क्या है जो हर अगली पुस्तक के बनने के मूल में होना ही चाहिए।

रामचरितमानस की रचना करते समय तुलसीदास ने कहा था, नानापुराणनिगमागम सम्मतम् “क्वचिदन्यतोऽपि। ‘क्वचिदन्यतोऽपि’ या ‘कुछ और भी’ की तलाश हमें नए की ओर ले जाती है। यह तलाश ही एक नई रचना को जन्म देती है और एक नयी पुस्तक को भी। ‘कुछ और भी’ यानी जो अब तक कहा नहीं गया या शायद कहा तो गया पर वैसे नहीं कहा गया जैसी समय की मांग है। समय की मांग क्या है? यह एक अहम सवाल है।

हर समय की अपनी आवाज़ होती है। कुछ अपने बोल होते हैं, अपने शब्द, अपने मुहावरे होते हैं और होती है अपनी भाषा जिससे संवाद किए बगैर उस समय की धड़कन यानी बच्चे के लिए कोई किताब नहीं लिखी जा सकती। यही किसी भी नयी रचना या नयी पुस्तक की ज़मीन बन सकती है। भाषा क्या है?

‘निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल’ जब भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने यह बात कही थी वह वक्त स्वतंत्रता आंदोलन का था। जाहिर है स्वतंत्रता से भाषा के व्यापक संबंध को उन्होंने बखूबी पहचाना था। यह विडंबना ही है कि आज बहुत से हिंदी भक्त उनको याद तो करते हैं (खासतौर से हिंदी पखवाड़े में) और बार-बार उद्धृत भी करते हैं लेकिन ‘निज भाषा’ के महत्त्व को भूल गए हैं। हम भूल गए हैं कि भाषा का व्यक्ति की आज़ादी और व्यक्ति की आज़ादी का देश की आज़ादी से क्या रिश्ता है?

भाषा साहित्य की हर नयी पाठ्यपुस्तक बच्चे की अस्मिता, निजी सोच, निज पर विश्वास और इन सबके साथ-साथ आज़ादी की ज़बान बन सकती है। अफ़सोस है कि आज़ादी के लगभग साठ वर्षों बाद भी ऐसा नहीं हुआ है। हमारे बच्चे कभी पाठों की ज़बान बोलते हैं तो कभी अध्यापक की। स्कूली माहौल उसे अपनी भाषा दे सकने में असमर्थ रहा है। ऐसा कब तक होगा? कब तक बच्चे किसी-न-किसी की ज़बान बोलते रहेंगे? इसका नतीजा बेहद खतरनाक हो सकता है। किसी से छिपा नहीं है कि युवा होते बच्चों की एक बड़ी जमात अपराध और हिंसा की दुनिया में सक्रिय हो रही है। इसे रोकना ही होगा और इस प्रक्रिया में भाषा की पढ़ाई को नए सिरे से बार-बार विचारना होगा। क्योंकि भाषा का प्रश्न अपनी अस्मिता, अपनी ज़मीन और खुद पर विश्वास का प्रश्न है। कितने ही साल ‘बाल वर्ष’ के रूप में मनाए

गए। एक ओर बच्चों की मांगों को लेकर पूरा देश नए-नए शब्द गढ़ता रहा, नई-नई योजनाएँ बुनता रहा तो दूसरी ओर अपनी भाषा पाने की कोशिश में बेजुबान बच्चा छटपटाता रहा। एक पूरी की पूरी पीढ़ी यह पुकारते हुए बड़ी होती रही- “हमें हमारे शब्द दो” “हम बोलना चाहते हैं” “हमारी जीभ हमारे दाँतों के नीचे अकुला रही है” जिह्वा की इस अकुलाहट को सुनने का अवसर बन सकती है एक नयी पाठ्यपुस्तक। समय फिर हमारे हाथों में है। यह वह समय है जब पुराना अभी गया नहीं और नया बहुत कुछ आने को शेष है। यह वह समय है जबकि हम और आप सब मिलकर बच्चे

को अपनी ज़बान दे सकने में सक्रिय भागीदारी कर सकते हैं।

भाषा की पढ़ाई के बहाने एक सचेत, जागरूक सक्रिय ऐसी बोलती पीढ़ी पैदा करनी होगी जो भाषा का बर्ताव करते समय शोर और शांति में अंतर कर सके। क्या करती है एक नई पुस्तक? दुनिया की कोई पाठ्यपुस्तक तब तक अधूरी है जब तक उनके पन्नों में रंगते शब्दों, अध्यापक और बच्चों तथा इस विशाल दुनिया के बीच संवाद कायम न हो। एक नयी किताब द्वारा आपसी संवाद की यह प्रक्रिया सीखने-सिखाने के ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकती है, जैसा आप चाहते हैं।

*(उक्त लेख पूर्व में जनसत्ता (18 फरवरी, '07) में प्रकाशित हो चुका है।)*

# लोकतंत्र एवं शिक्षा

गोपाल प्रसाद नायक\*

सामान्य शब्दों में लोकतंत्र जीवनयापन की एक ऐसी शैली है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। लोकतंत्र समान अधिकार तथा समान स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर आधारित है। ये सिद्धांत किसी जाति अथवा व्यक्ति विशेष के लिए न होकर वरन् सभी के लिए होते हैं। लोकतंत्र केवल एक शासकीय व्यवस्था ही नहीं है, यह एक प्रगतिशील विचारधारा है जो केवल शासन के रूप तक सीमित नहीं होती बल्कि सामाजिक क्षेत्र को भी अनेक अर्थों में प्रभावित करती है। सामाजिक व्यवस्था के रूप में लोकतंत्र ऐसा विचार है जो स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की भावनाओं के आधार पर समाज को गठित करता है। देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए लोगों में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना एवं समझ के साथ उत्तरदायित्व की भावना का होना ज़रूरी है इसके विपरीत अवस्था में लोकतंत्र के विफल होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः नागरिकों में राजनीतिक चेतना भरना और उन्हें अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही पूर्ण हो सकता है। यदि हम शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार करें और उसके द्वारा नागरिकों में लोकतांत्रिक भावना का विकास कर दें तो निःसंदेह हमारा लोकतंत्र सफल एवं सबल हो सकेगा। प्रस्तुत लेख में इन्हीं बिन्दुओं के आलोक में लोकतंत्र के स्वस्थ विकास में शिक्षा की भूमिका को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

## लोकतंत्र का अर्थ

लोकतंत्र एवं शिक्षा का संबंध समझने के पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि लोकतंत्र का अर्थ क्या है? अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के शब्दों में लोकतंत्र का अर्थ 'जनता का शासन, जनता द्वारा, जनता के लिए है'। (Democracy is the

government of the people by the people and for the people)

बोडे (Bode) के कथनानुसार लोकतंत्र जीवनयापन की एक रीति है। जीवनयापन की रीति से उनका तात्पर्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करना है, चाहे वह राजनीतिक हो, सामाजिक हो अथवा आर्थिक।

\*रीडर, शिक्षा संकाय, म.गां. काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

राधाकृष्णन विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) में इसी विचारधारा का समर्थन मिलता है। रिपोर्ट में लोकतंत्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है—

“लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं वरन् जीवनयापन की एक रीति भी है। लोकतंत्र समान अधिकार तथा समान स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर आधारित रहता है।”

ये सिद्धांत किसी जाति विशेष अथवा व्यक्ति विशेष के लिए नहीं वरन् सभी के लिए है। प्रजातंत्र केवल एक शासकीय व्यवस्था नहीं है। प्रजातंत्र एक प्रगतिशील विचारधारा है जो केवल शासन के रूप तक सीमित नहीं होती। यह सामाजिक क्षेत्र में भी आ जाती है। सामाजिक व्यवस्था के रूप में लोकतंत्र ऐसा विचार है जो स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की भावनाओं के आधार पर समाज को गठित करना चाहता है।

सामाजिक दृष्टि से सभी नागरिक बराबर है। प्रजातंत्र में समानता को बहुत महत्व दिया जाता है। समानता का तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्तियों को अवसर मिले। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुकूल अवसर मिले। जन्म, रंग, जाति एवं धर्म के कारण अथवा किसी दल विशेष का सदस्य होने के नाते कोई व्यक्ति बड़ा अथवा छोटा नहीं समझा जा सकता। सभी नागरिकों को अपनी-अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार अपना कार्य करने एवं कार्य में उन्नति करने की स्वतंत्रता होती है। सबको अपनी बौद्धिक योग्यता

के आधार पर पद प्राप्त करने का अधिकार होता है। किसी को भी अधिकारों एवं उन्नति के अवसरों से वंचित नहीं किया जा सकता है। राज्य अथवा समाज द्वारा सबको समान अवसर तथा सुविधाएँ प्रदान की जाती है जिससे प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का एक श्रेष्ठ नागरिक बन सके।

यदि हम संसार के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें विदित होगा कि अनेक देशों में लोकतंत्र असफल सिद्ध हो गया। अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान की उथल-पुथल एवं वहाँ की सैनिक तानाशाही से हम परिचित हैं। अनेक देशों में सैनिक क्रान्तियों के पीछे लोकतंत्र की असफलता छिपी हुई दिखायी पड़ती है। इन देशों में लोकतंत्र के असफल होने के अनेक कारण हो सकते हैं, किंतु एक बहुत बड़ा कारण यह रहा है कि इन देशों में लोकतंत्र केवल राजनीति तक ही सीमित रहा है। वोट देना, चुनाव में भाग लेना, चुनाव सभाओं का आयोजन करना एवं सत्ता हथियाना जैसे कार्यों तक ही यदि लोकतंत्र सीमित रहा तो वह अवश्य असफल हो जाएगा। यदि देश के नागरिक सुयोग्य हैं उनमें राजनीतिक चेतना है और देश के प्रति अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को समझते हैं तो वे लोकतंत्र को सफल बना सकते हैं। इसके विपरीत अवस्था में लोकतंत्र के विफल होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः नागरिकों में राजनीतिक चेतना भरना और उन्हें अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही पूर्ण हो सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में इन्हीं

बिंदुओं के आलोक में लोकतंत्र के स्वस्थ विकास में शिक्षा की भूमिका को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

### लोकतंत्र के मुख्य सिद्धांत

लोकतंत्र के मुख्य सिद्धांत—स्वतंत्रता, समानता बंधुत्व एवं न्याय है।

#### स्वतंत्रता (Freedom)

स्वतंत्रता के अभाव में मानव अपनी शक्तियों का विकास नहीं कर पाता है भारतीय लोकतंत्र में नागरिकों को विभिन्न स्वतंत्रताएं जैसे—वाक् स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने की स्वतंत्रता, कोई वृत्ति, उपजीविका आदि की स्वतंत्रता प्राप्त है। व्यक्ति इन स्वतंत्रताओं का उपयोग तभी सफलतापूर्वक कर सकता जब वह दूसरे व्यक्तियों के अधिकारों को अपने ही अधिकारों के समान मानेगा।

#### समानता (Equality)

लोकतांत्रिक दृष्टि से समानता का राजनीतिक पहलू महत्वपूर्ण है। समानता के राजनीतिक रूप का अर्थ यह है कि राजनैतिक व्यवस्था में सभी वयस्क नागरिकों को समान नागरिक और राजनैतिक आधार उपलब्ध हों। राजनैतिक समानता का यह आशय नहीं है कि राज्य में प्रत्येक व्यक्ति समान शक्ति का प्रयोग करता हो। इसका अभिप्राय केवल यह है कि प्रत्येक व्यक्ति समान राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग कर सके। अर्थात् सभी

व्यक्तियों को समान रूप से शासन में भाग लेने का अवसर मिल जाता है।

समानता का दूसरा पक्ष नागरिक समानता है। उसका तात्पर्य सभी को नागरिकता के समान अवसर प्राप्त होने से होता है। नागरिक समानता की अवस्था में व्यक्ति के मूल अधिकार सुरक्षित होने चाहिए तथा सभी को कानून का संरक्षण समान रूप से प्राप्त होना चाहिए क्योंकि कानून की दृष्टि से यदि धन, पद, धर्म एवं वर्ग के आधार पर भेद होने लगे, तो उससे नागरिक असमानता उत्पन्न हो जाएगी। नागरिक समानता के आधार पर ही सामाजिक समानता लाना सम्भव होता है। आधुनिक युग में समानता का एक और पक्ष महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। यह है आर्थिक समानता। आर्थिक समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी के पास समान सम्पत्ति अथवा धन हो। इसका तो केवल इतना ही तात्पर्य है कि सम्पत्ति तथा धन का उचित वितरण हो जिससे उसके अभाव के कारण किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधा न पड़े।

हर समाज में कुछ ऐसे मूल्य होते हैं, जिनकी व्यवस्था इसलिए की जाती है कि समाज उनसे श्रेष्ठतर मूल्यों को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ सके। उदाहरण के लिए व्यक्ति का स्वतंत्रता व सामाजिक समानता में विश्वास इसलिए होता है कि इनके सहारे उसके व्यक्तित्व को विकास का सर्वश्रेष्ठ वातावरण प्रस्तुत होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए यह अनिवार्य है कि व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान

किया जाए जिससे हर व्यक्ति अपने ढंग से अपनी पूर्णता के मार्ग पर आगे बढ़ सके। लोकतांत्रिक समाज का यह आदर्श या मूल्य सर्वाधिक महत्व का माना जाता है। मनुष्य के विकास में व्यक्तित्व के भौतिक व बाहरी पहलुओं से कहीं अधिक महत्व उसके आन्तरिक पहलुओं का होता है। मनुष्य चाहता है कि वह परिपूर्ण बने। इसके लिए आवश्यक है कि उसके व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान हो। इसके अभाव में व्यक्ति के पास सब कुछ होते हुए भी उसे रिक्तता या कुछ कमी महसूस होती है।

### **बंधुत्व (Fraternity)**

स्वतंत्रता एवं समानता के बीच समन्वय लाने का कार्य बंधुत्व या भ्रातृत्व करता है। सामाजिक हितों की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि सभी व्यक्ति आपस में सहयोग करें। जब परस्पर प्रेम होता है, तभी सहयोग हो सकता है, अन्यथा पारस्परिक प्रेम के अभाव में सहयोग नहीं होता। जब व्यक्तियों में स्वार्थ के लिए संघर्ष होता है तो स्वतंत्रता और समानता के बीच विरोध खड़ा हो जाता है। इसलिए भ्रातृत्व को स्वतंत्रता एवं समानता के सामंजस्य स्थापित करने वाली कड़ी कहा गया है।

### **न्याय (Justice)**

लोकतांत्रिक व्यवस्था न्याय पर आधारित होनी चाहिए। लोकतंत्र में न्याय की दृष्टि से अमीर, गरीब, निर्बल व शक्तिशाली आदि सभी समान हैं। उनके साथ किसी प्रकार का कानूनी भेदभाव नहीं होता है।

अनेक राजनीतिक दार्शनिक तो यह मानते हैं कि लोकतांत्रिक प्रणाली ही न्याय की प्राप्ति का एकमात्र साधन है। वैसे न्याय लोकतंत्र का ऐसा मूल्य है जो अपने आप में व्यापकतम प्रकृति रखता है। लोकतंत्र में राजनीतिक स्वतंत्रताएं एवं समानताएं हर नागरिक को प्राप्त होती हैं। इस कारण हर व्यक्ति अन्याय की अवस्था से अपने आपको मुक्त करने के कारगर साधन रखता है। अतः न्याय की व्यवस्था उस समय में स्वतः ही हो जाती है जहाँ स्वतंत्रता, समानता और व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान करने वाली संस्थागत व्यवस्थाएं होती हैं। लोकतांत्रिक ढंग से लिए गए निर्णयों का आधार खुला विचार-विनिमय होता है। लोकतंत्र में निर्णय चाहे किसी भी स्तर पर लिए जाएं उनमें जोर-जबर्दस्ती के बजाए विचार-विमर्श एवं आम सहमति मुख्य रहती है। विचार-विमर्श एवं आम सहमति की निर्णय प्रक्रिया में कुछ या अधिकांश लोगों का सम्मिलित होना किसी निर्णय के ढंग को लोकतांत्रिक नहीं बनाता है। इसके लिए निर्णय प्रक्रिया में सारे जन की सहभागिता का होना अनिवार्य है अर्थात् निर्णय लेने में राजनीतिक व्यवस्था के सभी नागरिकों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होना आवश्यक है। अगर किसी निर्णय-विधि से अधिकांश व्यक्तियों को वंचित रखा गया हो तो वह निर्णय प्रक्रिया लोकतांत्रिक नहीं कही जा सकती। निर्णय प्रक्रिया में सम्पूर्ण समाज को सहभागी बनाने का दूसरा नाम ही लोकतंत्र है। लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि एक सीमा तक विचार-विमर्श व



वाद-विवाद की छूट रहे और अन्त में बहुमत के आधार पर निर्णय ले लिए जाएँ तथा बहुमत द्वारा लिए गए ऐसे निर्णय सब स्वीकार कर लें। अर्थात् लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया वस्तुतः विचार-विमर्श, वाद-विवाद एवं सामंजस्य की ही प्रक्रिया है। लोकतंत्र में शासकों को सत्ता, जनता की धरोहर के रूप में प्राप्त रहती है तथा इस सत्ता का उन्हें जनता के हित में, जनता की उन्नति व प्रगति के लिए ही प्रयोग करना होता है। केवल वही राजनीतिक समाज लोकतांत्रिक माने जाते हैं जहाँ शासक निरंतर उत्तरदायित्व निभाते हैं। लोकतंत्र में हर व्यक्ति को राजनीतिक स्वतंत्रता रहती है। वह समाज के हितों की रक्षा के लिए किसी भी दल का सदस्य बन सकता है तथा किसी भी व्यक्ति को अपने प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित करने के लिए मत दे सकता है। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि लोकतंत्र वास्तव में जीवन का एक तरीका है।

### लोकतंत्र एवं शिक्षा में संबंध

लोकतंत्र का आदर्श है कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे की सहायता से पूर्णतया को प्राप्त करें। लोकतंत्र न तो समाज द्वारा व्यक्ति के शोषण और न व्यक्ति द्वारा समाज के हितों की अवहेलना की आज्ञा देता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि लोकतंत्र का कार्य समाज को इस प्रकार संगठित करना है जिससे व्यक्ति समाज के लिए हितप्रद कार्यों द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। अतः लोकतंत्र में शिक्षा की उपेक्षा नहीं की जा

सकती है, क्योंकि शिक्षा ही व्यक्ति में ज्ञान, रुचियों, आदर्शों और शक्तियों का विकास करती है। लोकतंत्र की सफलता के लिए सबसे आवश्यक बात शिक्षा और उच्च कोटि की राजनैतिक चेतना है। यदि लोगों को राज्य के कार्यों में रुचि नहीं है और वे समाज की समस्याओं को नहीं समझते हैं तो लोकतंत्र केवल नाम के लिए होता है। लोकतंत्र में जितने भी दोष बताए जाते हैं उन सबका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव है।

जॉन ड्यूवी ने कहा था-

*“शिक्षा के अभाव में लोकतंत्र लंगड़ा, निर्जीव तथा लचीला है और लोकतंत्र के अभाव में शिक्षा नीरस तथा मृतप्राय है।”*

शिक्षा ही लोकतंत्र के नागरिकों को जागरूक बनाती है और राज्य के कार्यों में उनकी रुचि उत्पन्न करती है।

राधाकृष्णन रिपोर्ट (1948-49) के अनुसार, लोकतंत्र के हाथ में शिक्षा ही सबसे बड़ी युक्ति है जिसके द्वारा वह नागरिकों को सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति दिलाता है और उनके बीच समानता का भाव बनाए रखता है। साथ-ही-साथ प्रजातंत्र इस बात का प्रयत्न करता है कि न तो समाज व्यक्ति का शोषण करे और न व्यक्ति समाज हित की अवहेलना करे। व्यक्ति अपना विकास करते हुए समाज हित में लीन रहे। यह तभी संभव है जब व्यक्ति में शिक्षा द्वारा आवश्यक रुचियों आदतों तथा मनोवृत्तियों का विकास किया जाए। अतः प्रजातंत्र में शिक्षा की अवहेलना नहीं की जा सकती है।



प्रजातांत्रिक दृष्टि से यह आवश्यक है कि हमारे भावी नागरिक हमारी संस्कृति, सभ्यता, कला एवं ज्ञान से परिचित हों जिससे वे समय आने पर इनके स्थायित्व एवं विकास में अपना योगदान कर सकें। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही पूर्ण होता है। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हमारी संस्कृति का संरक्षण तथा उसका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण किया जा सकता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का संतुलित एवं सर्वांगीण विकास करना है। साथ ही साथ उसके चरित्र का भी निर्माण करना है जिससे कि वह एक योग्य, चरित्रवान एवं सामंजस्य पूर्ण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बन सके और अपने जीवन के सभी कार्य उदारता, निष्पक्षता, ईमानदारी एवं कुशलता से कर सके। यह तभी संभव है जब शिक्षा द्वारा व्यक्ति की चिंतन शक्ति, तर्कशक्ति, सूझ-बूझ आदि का विकास हो।

लोकतंत्र के मुख्य आदर्श सिद्धांत-स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व हैं। बहुत से देशों ने इन्हें आदर्शों पर अपनी-अपनी सरकारों का गठन किया। भारत ने इन तीनों में न्याय का आदर्श और जोड़ दिया और इन चारों आदर्शों के आधार पर अपनी प्रजातंत्रीय सरकार का गठन किया और यह घोषणा की, कि भारत स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व तथा न्याय के आधार पर लोकतंत्र को प्राप्त करेगा। इन आदर्शों की प्राप्ति शिक्षा द्वारा ही संभव है। प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जब राष्ट्र के सभी नागरिक शिक्षित हों और सभी को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त हो। इस दृष्टि से हमारे संविधान ने पैतालीसवीं

धारा के अंतर्गत सभी राज्यों को यह आदेश दिया है कि वे संविधान के लागू होने की तारीख से दस साल के अंदर 14 वर्ष तक के सभी बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध करें।

महात्मा गांधी ने यह बात स्पष्ट रूप से कही थी कि देश की उन्नति एवं प्रजातंत्र के स्थायित्व के लिए हमें अपने देश के नागरिकों को अज्ञानता एवं निरक्षरता से मुक्त कराना पड़ेगा। यह कार्य बिना सार्वभौमिक शिक्षा के पूर्ण न हो सकेगा। यद्यपि भारत सरकार जनतंत्र की सफलता के लिए प्रयत्नशील है परंतु अभी तक जनतंत्रीय आदर्शों की जड़ें जम नहीं सकीं हैं। जिसके कारण जनतंत्र जितना सफल होना चाहिए था उतना नहीं हो सका। हमें जिस सुख एवं शान्ति की आशा थी वह नहीं मिली है। इसके विपरीत द्वेष, ईर्ष्या, असहयोग, निर्धनता, असमानता भ्रष्टाचार आदि में वृद्धि हुई है।

लोकतंत्र की असफलता के अनेक कारण हैं। प्रथम-मुख्य कारण अशिक्षा एवं अज्ञानता है। शिक्षा जनतंत्र की रीढ़ की हड्डी है। अशिक्षित व्यक्तियों से लोकतंत्र की रक्षा नहीं हो सकती। अशिक्षित होने के कारण जनता लोकतंत्र का अर्थ एवं मतदान के महत्व को नहीं समझती। स्वतंत्र रूप से न विचार कर सकती और न निर्णय ले सकती है। वह अपनी रोटी-दाल की समस्या दूर करने में लगी रहती है। शिक्षा के अभाव के कारण उनका व्यवहार जनतंत्र की भावनाओं के अनुकूल नहीं होता। लोकतंत्र की असफलता का दूसरा मुख्य कारण आर्थिक

असमानताएँ हैं। जब तक ये असमानताएँ दूर नहीं होंगी तब तक वर्ग-भेद समाप्त नहीं होगा। जब तक वर्ग-भेद रहेंगे, वर्ग-संघर्ष रहेगा और लोकतंत्र सफल नहीं होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जैसे क्षेत्रीयता, जातीयता एवं साम्प्रदायिकता आदि।

शिक्षा और लोकतंत्र का घनिष्ठ संबंध है। उपयुक्त शिक्षा के अभाव में लोकतंत्र की सफलता संदिग्ध है। लोकतंत्र जनमत पर आधारित है और जनमत को प्रबुद्ध बनाना शिक्षा का कार्य है। यदि लोग शिक्षित हैं, यदि वे स्वतंत्र रूप से विचार कर सकते हैं और अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यवहार में उतार सकते हैं तो लोकतंत्र सफल होगा। यदि लोग सत्य और असत्य में भेद कर सकते हैं और विचार की यथार्थता को समझ सकते हैं तो लोकतंत्र का संचालन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यह सब कार्य शिक्षा द्वारा संभव है। लोगों में इस प्रकार की क्षमता का विकास करना शिक्षा का कार्य है। अतः लोकतंत्र की सफलता के लिए शिक्षा में उपयुक्त परिवर्तन लाना है।

जॉन ड्यूवी का मत है कि जिस प्रकार शरीर को कायम रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार समाज के अस्तित्व के लिए शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा का प्रारंभ उस समय होता है जब बालक प्रजाति की सामाजिक चेतना में सक्रिय रूप से भाग लेता है। अतः उसने शिक्षा के महत्वपूर्ण साधन-विद्यालय को एक सामाजिक संस्था माना जिसमें प्रजाति की सामाजिक चेतना को स्थान प्रदान

किया जा सके। इस सामाजिक संस्था में बालक एक दूसरे के अधिकारों, विचारों एवं व्यक्तियों का आदर करना तथा अपने कर्तव्यों का समझदारी के साथ निर्वाह करना सीखते हैं। इसके अतिरिक्त यह संस्था बालक को उन सामाजिक क्रियाओं में प्रशिक्षित करती है जो वर्तमान सामाजिक जीवन में प्रचलित हैं। विद्यालय सामान्यतः सामुदायिक जीवन का वह स्वरूप है जिसमें वे समस्त साधन केंद्रित होते हैं जो बालक की शक्तियों को सामाजिक हितों के लिए उपयोग में लाने को तैयार करते हैं।

लोकतंत्र में विद्यालयों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। विद्यालय समाज का दर्पण ही नहीं, उसका मार्गदर्शक भी होता है। समाज की परंपराओं को वह प्रतिबिम्बित तो करता ही है, साथ में उन परंपराओं की आलोचना करके सही एवं उचित को अपनाने और अनुचित एवं अनुपयोगी को समाप्त करने का परामर्श देकर वह समाज का पथ-प्रदर्शन भी करता है। विद्यालय में रंग, जाति, आदि के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए क्योंकि जब तक सभी जाति एवं वर्ग के बालकों को विद्यालय में समान रूप से सुविधा नहीं मिलती, तब तक समानता का उद्देश्य अप्राप्त ही बना रहेगा। राजनैतिक दलों को विद्यालयों से दूर रहना चाहिए। विद्यालय सभी राजनैतिक दलों के सिद्धांतों का निष्पक्ष विश्लेषण कर सकता, किंतु किसी राजनैतिक दल का अखाड़ा नहीं बन सकता। यदि ऐसा न हुआ तो लोकतंत्र का सफल संचालन सम्भव नहीं हो सकेगा।

एक लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा के उद्देश्य की अभिव्यक्ति उचित नागरिक के पूर्ण विकास

में निहित है। एक उचित नागरिक से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने स्वयं के प्रति तथा अपने सहयोगियों के प्रति उत्तरदायित्व को निभा सके। वह ऐसा व्यक्ति हो जो अपने अधिकारों और कर्तव्यों के संबंध में जागरूक हो। उसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याओं को व्यवहारिक रूप से समझने की क्षमता हो। उसमें तर्क-वितर्क करने की शक्ति हो। वह जीवन के प्रति सृजनात्मक रूप से विचार रखता हो और अपने जीवन-यापन के लिए धन अर्जित कर सकता हो। उसकी रुचियों का सम्यक विकास हो तथा उसमें व्यापकता हो। उसमें चिन्तन करने की क्षमता हो। शिक्षा को अपने उद्देश्यों में व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास दोनों को स्थान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षा में बालक के लिए व्यवसायिक उद्देश्य को भी महत्व दिया जाना चाहिए। भारत में प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जब यहाँ पर दी जाने वाली शिक्षा उचित नागरिकता का विकास करे।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) के अनुसार भारतीय लोकतंत्र के लिए तीन उद्देश्य हैं- (1) चरित्र का प्रशिक्षण, जो विद्यार्थी को इस योग्य बना दे कि वह रचनात्मक रूप से विकसित होती हुई सामाजिक व्यवस्था में नागरिक के कर्तव्यों का पालन कर सके। (2) व्यवहारिक तथा व्यवसायिक कुशलता में विकास हो ताकि वे अपने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने में अपना सहयोग दे सके। (3) साहित्यिक, कलात्मक और सांस्कृतिक रुचियों का विकास हो, जो उनके आत्म-प्रदर्शन के लिए तथा संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है, जिनके बिना

एक राष्ट्र की सक्रिय संस्कृति का विकास संभव नहीं है।

विद्यालय संगठन में लोकतंत्र की भावना को उचित स्थान मिलना चाहिए। अध्यापकों को स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे स्वयं पाठ्यक्रम निर्धारित करें। उन्हें शिक्षण पद्धति और पाठ्य-पुस्तकों को चुनने की स्वतंत्रता होनी आवश्यक है। हमारे देश में अध्यापकों की स्वतंत्रता तथा विद्यालय संगठन में लोकतंत्र की भावना को बहुत कम महत्व दिया जाता है। यह सर्वथा अनुचित है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश के नागरिक लोकतंत्र के आदर्शों को अपनाएँ तो हमें सबसे पहले विद्यालयों में उचित वातावरण निर्मित करना होगा। विद्यालयों में सहयोग, सहानुभूति, प्रेम इत्यादि को प्रोत्साहन देने की ओर विशेष बल देना होगा। लोकतंत्र की भावना विद्यालय संगठन में उसी समय प्रभावशाली होगी जब अध्यापकों तथा प्रधानाचार्य आदि के आपसी संबंध मित्रता एवं सहयोग पर आधारित होंगे।

शिक्षा के उद्देश्य कितने ही अच्छे क्यों न हों, कितना ही सुन्दर पाठ्यक्रम क्यों न बना दिया जाए, किंतु यदि शिक्षक को उपेक्षित कर दिया जाए तो सारी शिक्षा योजनाएँ जहाँ की तहाँ रखी रह जाएंगी। इसलिए शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। लोकतंत्र में अध्यापक मुख्य रूप से समाज के प्रति उत्तरदायी होता है। उसकी वफ़ादारी शासन के प्रति न होकर छात्रों व अभिभावकों के प्रति होनी चाहिए। शिक्षकों के लिए यह भी आवश्यक है चरित्रवान हों क्योंकि लोकतंत्र में अपने आचरण से ही वे छात्रों को

प्रभावित कर सकते हैं। लोकतंत्रीय शिक्षा का आदर्श है कि छात्रों में अच्छी आदतें डाली जाएँ एवं उनके चरित्र का उन्नयन किया जाए। यह तभी संभव है जबकि शिक्षक स्वयं सच्चरित्र हों।

लोकतंत्रीय समाज के विद्यालयों में शिक्षक का स्थान एक मित्र, पथ-प्रदर्शक, समाज-सुधारक तथा नेता के रूप में होता है, जिससे वह अपने छात्रों तथा समाज का समुचित रूप से पथ-प्रदर्शन कर सके। शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज में उचित परिवर्तन लाकर उसे प्रगति की ओर अग्रसर करें। इसके लिए उसमें तीन गुणों की अपेक्षा की जाती है। पहला, वह एक योग्य नागरिक हो तथा लोकतंत्रीय आदर्शों, मूल्यों एवं सिद्धांतों में पूर्ण निष्ठा रखता हो। दूसरा इसमें अपने छात्रों को समझने तथा उनको पथ-प्रदर्शन करने की क्षमता हो, जिससे वह उनको एक योग्य नागरिक बनाने में सफल हो सके। तीसरा, वह लोकतंत्रीय आदर्शों के अनुसार प्रशिक्षित किया गया हो। अन्त में कह सकते हैं कि वह ऐसे उच्चचरित्र का व्यक्ति होना चाहिए, जिससे वह समाज तथा छात्रों का सम्मान प्राप्त कर सके और अपने उदाहरणों एवं सिद्धांतों द्वारा उनका नेतृत्व करने में सफल हो सके।

लोकतंत्र में स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है। बालकों को अपनी मनमानी करने से रोकने के लिए उन्हें उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना चाहिए। जब विद्यार्थी

अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन होते हैं और अपने अधिकारों की मांग करते हैं तभी अधिकारियों एवं विद्यार्थियों में संघर्ष उत्पन्न होता है। ऐसे अनेक उदाहरण वर्तमान समय में देखे जा सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि छात्रों को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों को समझने के अवसर दिये जाएँ और सामाजिक नियंत्रण का महत्व बतलाया जाए। लोकतंत्र की सफलता अनुशासन पर निर्भर करती है। बिना अनुशासन के मानव समाज तथा देश की क्रियाएँ अव्यवस्थित रहती हैं और अव्यवस्था का परिणाम देश के लिए भयंकर सिद्ध हो सकता है। शिक्षा में भी स्वानुशासन पर बल दिया जाता है। इसके लिए विद्यालयों में सभी को अपनी प्रतिभा के विकास के लिए समान अवसर तथा स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। शिक्षक का व्यवहार निष्पक्ष होना चाहिए।

यदि अपने देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था की नींव सुदृढ़ करनी है तो इसके लिए अपनी शिक्षा व्यवस्था को लोकतांत्रिक रूप देना होगा। देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को चलाने के लिए योग्य नागरिकों की जरूरत है तथा योग्य नागरिकों का निर्माण शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। शिक्षा के प्रति उपेक्षा का यह परिणाम है कि हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में हजारों रोग लग गए और देश इस समय नाजुक परिस्थितियों से गुजर रहा है। यदि हम शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार करें और उसके द्वारा नागरिकों में लोकतांत्रिक भावना का विकास करें तो निःसंदेह हमारा लोकतंत्र सफल एवं सबल हो सकेगा।

### संदर्भ

1. कोठारी, रजनी 1970. *पॉलिटिक्स इन इण्डिया*, ओरियन्ट लागमैन्स, नई दिल्ली
2. कश्यप, सुभाष 1969. (लेख) 'संविधान की आत्मा : प्रस्तावना', लोकतंत्र समीक्षा पत्रिका,
3. गेना, सी.वी. 1998. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि., जंगपुरा, नई दिल्ली
4. शर्मा, प्रभुदत्त 1996. *तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाएँ*, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर एवं नई दिल्ली
5. पाण्डेय, रामशकल 1995. *शिक्षा-दर्शन*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. लिन्डसे, ए.डी. 1962. *द मॉडर्न डेमोक्रेटिक स्टेट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क
7. माथुर, एस.एस. 1981. *शिक्षा सिद्धांत*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
8. अग्रवाल, एस.के. 1985. *शिक्षा के तात्विक सिद्धांत*, राजेश पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ
9. तिलक, रघुकुल 1972. *लोकतंत्र : स्वरूप एवं समस्याएँ*, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी (प्रथम संस्करण), लखनऊ
10. शरण, पी. 1976. *भारतीय शासन एवं राजनीति*, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ,
11. जौहरी, जे.सी. 1974. *भारतीय शासन एवं राजनीति*, दिल्ली
12. यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन 1948-49. *मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट*, डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
13. सेकेंड्री एजुकेशन कमीशन 1952-53., *मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट*, डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली

# रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिंतन की आधुनिकता

अनूप कुमार\*

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने समय की शिक्षा से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर गहन चिंतन किया और उनके समाधान के लिए जो सुझाव दिये, वे वर्तमान की कई शैक्षिक उलझनों को सुलझाने में भी कारगर प्रतीत होते हैं। इस तरह उनका शैक्षिक विमर्श आधुनिक कहा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में गुरुदेव के ऐसे ही कुछ विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एक विशिष्ट कवि के रूप में विश्वविख्यात हैं। विवेच्य कवि का अपनी दृष्टि की व्यापकता और चिंतन की समग्रता में महाकवि के रूप में अवतरित होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। उनका चिंतन उनकी रचनाओं में तो दिखाई देता ही है, वह बड़े ही व्यवस्थित ढंग से उनके लेखों/निबंधों में अनुस्यूत हुआ है। जीवन से संबद्ध विभिन्न पहलुओं पर गुरुदेव ने सूक्ष्मता से विचार किया है। इस क्रम में शिक्षा से जुड़े मुद्दों पर भी उनकी पैनी दृष्टि पड़ी है जो सालों बाद भी आधुनिक लगती है। विद्यालयों की स्थिति को लेकर रवीन्द्रनाथ की चिंता द्रष्टव्य है-

“इस देश में हम जिसे स्कूल कहते हैं वह शिक्षा देने का एक कारखाना है। अध्यापक इस कारखाने का अंग है। साढ़े दस बजे

घंटी बजती है और कारखाना खुलता है। कल चलती रहती है और साथ ही अध्यापक का मुँह चलता रहता है। चार बजे कारखाना बंद हो जाता है और साथ ही अध्यापक रूपी कल भी अपना मुँह बंद कर देती है। छात्रगण कल से प्राप्त विद्या के दो-चार पन्ने रटकर घर लौट जाते हैं। उसके बाद परीक्षा के समय इस विद्या की जाँच होती है और उस पर चिह्न लगा दिया जाता है।”<sup>1</sup>

गुरु द्वारा प्रस्तुत व्यंग्यात्मक रूपक, उस शैक्षिक प्रणाली की विकृतिपूर्ण सच्चाई को उजागर करता है जो आज भी कमोबेश किसी न किसी रूप में प्रायः सभी विद्यालयों में चलन में है। उपर्युक्त उद्धरण में ‘कारखाना’ और ‘कल’ शब्द का प्रयोग सुचिंतित रूप से किया गया है।

\*प्रवाचक (हिंदी), क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर

<sup>1</sup>रवीन्द्रनाथ टैगोर 1964. *विश्व मानवता की ओर*, अनुवाद-इलाचंद जोशी, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 66

जहाँ कारखाने और कल हैं, वहाँ उत्पादन तो होगा ही और वह उत्पादन वस्तु के रूप में होगा। इस अर्थ में गुरुदेव के व्यंग्य का निहितार्थ है कि शिक्षा-व्यवस्था में, विद्यालयों में विद्यार्थियों को वस्तु की तरह एक उत्पाद के रूप में तैयार किया जा रहा है। यह ऐसा उत्पाद है जिसका शरीर गतिशील है लेकिन उसका 'अंतस' विद्यालय रूपी कारखाने में जड़प्राय हो गया है। विद्यालय वह स्थल है जहाँ बच्चों की सर्जनात्मक प्रतिभा (चाहे किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो) का विकास किया जाना अपेक्षित है, लेकिन वह बच्चों की रचनात्मक क्षमता का विकास न कर, उन्हें कुंठित कर देता है। विद्यार्थी जो कुछ करता है, वह स्वेच्छा से न होकर आरोपित होता है। आज भी ऐसे विद्यालय मुश्किल से मिलेंगे जहाँ बच्चे सोत्साह जाते होंगे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर विद्यालयी शिक्षा की सार्थकता, उसके समाज सापेक्ष होने में मानते थे। इस तरह वे इस बात पर बल देते थे कि शिक्षा और जीवन में किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं होना चाहिए। इस तरह वे समाज और जीवन से कटे विद्यालयों को बेजान मानकर निरर्थक समझते थे। उनका विचार है कि जहाँ विद्यालय अपने चारों ओर के समाज के साथ इस तरह घुल-मिल नहीं पाये हैं, जो बाहर से समाज के ऊपर बरबस लाद दिये गए हैं, वे शुष्क और निर्जीव

होते हैं।<sup>2</sup> उन्होंने विद्या के दो विभाग माने हैं – एक विशुद्ध ज्ञान का, दूसरा व्यवहार का। वस्तुतः औपचारिक ढंग की शिक्षा, विशुद्ध ज्ञान से संबंधित है जबकि जीवन के साथ उसकी संबद्धता उसे व्यवहारिक बनाती है। गुरुदेव ने शिक्षा पर चिंतन करते हुए अनेक स्थलों पर सैद्धांतिक और व्यवहारिक शिक्षा में तालमेल की बात कही है और शिक्षा को व्यवहारिक जीवन से जुड़ा होना आवश्यक बताया है। विद्यालय और विद्यालयी शिक्षा को जीवन से जोड़कर देखने के पीछे उनकी सुचिंतित विचाराधारा थी जो मनुष्य को विश्व-जीवन और उससे आगे ले जाती है। उनके ही शब्दों में –

*“वैयक्तिक जीवन से सामुदायिक जीवन में, सामुदायिक जीवन से विश्वजीवन में और विश्व-जीवन से अनंत की ओर बढ़ना ही आत्मा की स्वाभाविक प्रगति है।”<sup>3</sup>*

इस तरह उनके चिंतन में 'सा विद्या विमुक्तये' को अलग ढंग से समझाने की चेष्टा की गयी है। निश्चय ही आज की शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के इस व्यापक उद्देश्य को अनदेखा कर दिया गया है क्योंकि आज की शिक्षा-व्यवस्था विद्यार्थी को मुक्त करने के स्थान पर उसे अनेक प्रकार के बंधनों में कैद करती है। बंधनों में पड़कर मनुष्य, मनुष्यता के स्तर से काफी गिर जाता है।

<sup>2</sup>रवीन्द्रनाथ टैगोर 1964. *विश्व मानवता की ओर*, अनुवाद-इलाचंद जोशी, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 66

<sup>3</sup>उपरिवत्, पृ. 94



यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि ऐसे विद्यालयों में इस बात को भुला दिया जाता है कि शिक्षा का उद्देश्य ही मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाना है।<sup>4</sup> इसके लिए उन्होंने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि विद्यार्थियों को मनुष्य के संपर्क में आना चाहिए क्योंकि इसी से उसका सच्चा मनुष्य जाग्रत होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को काफी पहले अनुभव कर लिया था कि एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में बड़ा अंतर है।<sup>5</sup> इस तरह वे प्रकारांतर से ऐसी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दे रहे थे जो विद्यार्थी को उसकी निजता में देखते हुए उसके समूचे व्यक्तित्व के विकास में योग दे सके। उन्होंने विद्यालयों में बच्चों को उपेक्षित स्थिति में देखकर काफी क्षोभ व्यक्त किया। बच्चों के प्रति व्यवस्था के उपेक्षापूर्ण रवैये को उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण कहानी 'तोते की पढ़ाई' में प्रतीक और व्यंग्य रूप में प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है। तोते की पढ़ाई का प्रबंध राजा करता है और इसके लिए तमाम लोगों की व्यवस्था करता है, सारे संसाधन जुटाता है और तमाम तामझाम के बीच तोते को पिंजड़े में कैद करके रखा जाता है। सारे आयोजन उभरकर महत्वपूर्ण हो जाते हैं और वह तोता जिसे केंद्र में रखा जाना अपेक्षित था, घुटन के कारण विक्षिप्तता के कगार पर पहुँच गया और

अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है। कहानी के अंत में राजा के भतीजे, उन्हें बताते हैं कि पक्षी की शिक्षा पूरी हो गयी।

इस कहानी में कोरे पुस्तकीय ज्ञान की निर्थकता विद्यार्थी को शिक्षा देने के नाम पर ढेर सारे खर्चीले आडंबर और अंत में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को कुंठित कर देने वाले माहौल पर कटाक्ष किया गया है। इस तरह पारंपरिक शिक्षा-प्रणाली की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है। इस कहानी में प्रकारांतर से विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा की अनदेखी करने के दुष्परिणामों की ओर संकेत किया गया है।

शिक्षा-प्रणाली में विद्यार्थी को केंद्र में रखने की आवश्यकता को रेखांकित करने के बावजूद रवीन्द्रनाथ ने गुरु की भूमिका और महत्ता पर विशेष बल दिया है। उल्लेख है कि इस संदर्भ में उन्होंने 'गुरु' को शिक्षक से अलग करके देखा है। उनके अनुसार,

*“प्रारंभ में ही ज्ञान शिक्षा का आश्रम स्थापित करने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षक तो पत्रों में विज्ञापन देते ही दौड़ पड़ते हैं, पर गुरु तो फरमाइश करते ही पाए नहीं जा सकते।”<sup>6</sup>*

गुरुदेव ने जो अंतर दर्शाया है, उसके पीछे दृष्टि संभवतः यह रही है कि शिक्षक केवल

<sup>4</sup>रवीन्द्रनाथ टैगोर 1964. *विश्व मानवता की ओर*, अनुवाद-इलाचंद जोशी, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 81

<sup>5</sup>उपरिवत्, पृ. 66

<sup>6</sup>विश्व-मानवता की ओर, पृ. 75



शिक्षा देता है जबकि गुरु छात्रों के अंतरमन को मथकर उसे उन्नत करता हुआ जीवन को सही ढंग से जीने का विवेकपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। गुरुदेव के अनुसार शिक्षक कदाचित् शिक्षा देने के कार्य में उद्देश्य रखता है कि प्रतिदान (बदले में) उसे पैसा मिले, वह विद्यार्थी के घर से मिले या विद्यालय से वेतन के रूप में। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वार्थग्रस्त शिक्षकों पर कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा है कि

“आज के शिक्षक दुकानदार हैं, विद्यादान उनका व्यवसाय हो गया है। इसलिए वे खरीददार की खोज में फिरते रहते हैं। व्यवसायियों से लोग चीजें खरीद सकते हैं, पर उनके यहाँ बिक्री की चीजों की सूची में स्नेह श्रद्धा, निष्ठा आदि हार्दिक गुण भी रहेंगे ऐसी आशा कोई नहीं कर सकता। इस आशा के अनुसार ही शिक्षक लोग वेतन लेते हैं और विद्या-वस्तु बेचते हैं—यहीं पर छात्रों के साथ उनका सारा संपर्क समाप्त हो जाता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में अनेक शिक्षक जो लेन-देन के संबंध से ऊपर उठ पाते हैं, वे केवल अपनी निजी विशेषता के फलस्वरूप।”

गुरुदेव के इन विचारों का निहितार्थ है कि आज की शिक्षा का जो संकट है, उसके तमाम कारणों में से एक कारण यह है कि समाज में गुरु का लोप हो गया है, और शिक्षक शेष रह गए। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों

को गुरु के रूप में परिणित होना चाहिए। संभवतः इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गुरुदेव ने कहा कि यदि हमें आदर्श विद्यालय की स्थापना करनी है तो जनसमाज से दूर निर्जन में, मुक्त आकाश तथा उदार तरु-लताओं के बीच उसकी व्यवस्था करनी होगी। वहाँ अध्यापकगण एकांत में अध्ययन तथा अध्यापन में व्यस्त रहेंगे और छात्रगण उस ज्ञान-चर्चा के यज्ञक्षेत्र के बीच अपना विकास करेंगे।<sup>8</sup>

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस परिकल्पना को सैद्धांतिक स्तर पर ही नहीं रखा, उसे कार्यरूप में परिणत करने का कार्य भी संभव कर दिखाया। उनके द्वारा स्थापित शांति निकेतन इस बात का जीवंत प्रमाण है। कथनी-करनी में अद्वैत की स्थिति शांति निकेतन में बखूबी देखी जा सकती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी गुरुदेव की, शिक्षक और गुरु के बारे में व्यक्त अवधारणा को इस रूप में उद्धृत किया है—

“आजकल जो लोग शिक्षा देते हैं वे शिक्षक हैं, लेकिन उन दिनों जो लोग शिक्षा देते थे वे गुरु होते थे। वे लोग शिक्षा के साथ एक ऐसी वस्तु देते थे जो गुरु और शिष्य के आध्यात्मिक संबंध से भिन्न किसी प्रकार का देना पावना नहीं हो सकती। विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार के पारमार्थिक संबंध की स्थापना ही शांति निकेतन विद्यालय का मुख्य उद्देश्य है।”

<sup>7</sup>विश्व-मानवता की ओर, पृ. 76

<sup>8</sup>उपरिवत्, पृ. 73

शांति निकेतन विद्यालय की स्थापना के कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपने एक अध्यापक मित्र को लिखा। उपर्युक्त उद्धरण उसी का एक अंश है।<sup>9</sup> उन्होंने गुरु के व्यक्तित्व में मनुष्यत्व की अनिवार्यता पर बल दिया। मनुष्यत्व से दूर गए 'मास्टर साहब' को उन्होंने सबक रटाने का उस्ताद कहा है। इस तरह गुरुदेव ने गुरु के बारे में जो आदर्श कल्पना की, वह आज के शिक्षकों के सामने आदर्श कायम करती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मातृभाषा को बड़े सम्मान से देखा और कहा कि अपनी भाषा में शिक्षा पाना जन्मसिद्ध अधिकार है। मातृभाषा में शिक्षा दी जाए या नहीं इस तरह की कोई बहस होना ही बेकार है, उन्होंने कहा है कि अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाने का जन्मसिद्ध अधिकार भी इस अभागे देश में तर्क और बहस-मुहाबिसे का विषय बना हुआ है।<sup>10</sup> उनकी मान्यता कि जिस तरह हमने माँ की गोद में जन्म लिया है, उसी तरह मातृभाषा की गोद में जन्म लिया है, ये दोनों माताएँ हमारे लिए सजीव और अपरिहार्य हैं।<sup>11</sup> रवीन्द्रनाथ ने मातृभाषा की महत्ता को समझा और उसे समझाने का प्रयास भी किया। वर्तमान में यह धारणा बलवती होती जा रही है कि विद्यार्थियों को मातृभाषा में शिक्षा देना

मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक रूप से वांछनीय है क्योंकि विद्यालय आने पर बच्चे यदि अपनी भाषा को व्यवहृत होते देखते हैं, तो वे विद्यालय में आत्मीयता का अनुभव करने लगते हैं और यदि उन्हें सब कुछ उन्हीं की भाषा में पढ़ाया जाता है, तो उनके लिए सारी चीजों को समझना बेहद आसान हो जाता है। सर्वसाधारण की शिक्षा के विषय में विचार करते हुए गुरुदेव ने अपनी चिंता इन शब्दों में प्रकट की—

*“मातृभाषा में यदि शिक्षा की धारा प्रशस्त न हो तो इस विद्याहीन देश में मरुवासी मन का क्या होगा।”*<sup>12</sup>

इस कथन से जाहिर होता है कि उनके मन में यह विचार था कि इस देश में लोगों को शिक्षित करना अपेक्षित है और मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान करना ही सबसे प्रभावी क्रम है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी 'निज भाषा' कहकर प्रकारांतर से मातृभाषा के महत्व को अपने निम्नलिखित बहुचर्चित दोहे में निर्दिष्ट किया है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।  
बिन निज भाषा ज्ञाने के, मिटै न हिय को सूल।<sup>13</sup>

वस्तुतः प्रत्येक चिंतक, रचनाकार मातृभाषा को महत्व देते हुए अपने-अपने ढंग से, उसके

<sup>9</sup>मुकुंद द्विवेदी 1998. संपादक, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 8, मृत्युंजय रवीन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, (गुरुदेव का शांति निकेतन), पृ. 415

<sup>10</sup>उपरिवत्, पृ. 419

<sup>11</sup>विश्वनाथ नरवड़े 1991. रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग 1), साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पृ. 309

<sup>12</sup>अमृत राय 1990. रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग 2), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 339

<sup>13</sup>हेमंत शर्मा 1998. भारतेंदु समग्र, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृ. 228

बारे में अपने मंतव्य प्रकट करता है। गुरुदेव रवीन्द्र ने जिस बात को अपने निबंध में अच्छी तरह से समझाया है, उसी बात को भारतेंदु ने कविता के माध्यम से लोगों को अवगत कराने की सफल चेष्टा की है। इस संदर्भ में रवीन्द्रनाथ ने जापान का दृष्टांत रखा है कि इस देश में जितनी उन्नति हुई है, वह वहाँ की अपनी भाषा जापानी के ही कारण है। जापान ने अपनी भाषा की क्षमता पर भरोसा किया और अँग्रेजी के प्रभुत्व से जापानी भाषा को बचाकर रखा।

गुरुदेव ने चिंतन-प्रक्रिया से गुजरते हुए जनसामान्य के लिए इस महत्वपूर्ण विचार को प्रस्तुत किया कि अनावश्यक को जिस परिमाण में हम अत्यावश्यक बना डालेंगे उसी परिमाण में हमारी शक्ति का अपव्यय होता चला जाएगा। धनी यूरोप के समान हमारे पास संबल नहीं है। यूरोपवालों के लिए जो सहज है हमारे लिए वही भारस्वरूप हो जाता है। सुगमता, सरलता और सहजता ही वास्तविक सभ्यता है। अत्यधिक आयोजन की जटिलता एक प्रकार की बर्बरता है। ध्यातव्य है कि गुरुदेव ने उपर्युक्त विचार शिक्षा की समस्या पर विचार करते हुए प्रकट किए थे। इस तरह उनका मंतव्य स्पष्ट था कि शिक्षित होने

के क्रम में अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि हमें अपने परिवेश के अनुरूप आचरण करना चाहिए और फिजूलखर्ची और आडंबर के प्रदर्शन से बचना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से हम अपनी अर्थ-व्यवस्था के दायरे में रहेंगे और दिखावा न करके हम प्रकारांतर से उन लोगों के अपमान करने के पाप से भी बच जाएंगे जो अर्थाभाव में दो जून की रोटी भी नहीं खा पा रहे हैं।

यों तो गुरुदेव ने अपने लेखन में शिक्षा से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है परंतु यहाँ उनमें से कुछ का उल्लेख इस आशय से किया गया है कि इस बात का अनुभव किया जा सके कि उन्होंने शिक्षा पर जो चिंतन किया है, उनके समय के समाज से संबद्ध होने के साथ-साथ आज के समय की शैक्षिक समस्याओं का परिचय कराता है और उनके समाधान के सुझाव प्रस्तुत करता है। इस रूप में उनके विचारों की सार्थकता तथा प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। यदि हम लोग गुरुदेव के शैक्षिक विचारों से जुड़े बिंदुओं को ध्यान में रखें और उनके अनुरूप कार्य करें, तो वर्तमान समय की बहुत-सी समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है जिसका दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आएगा।

## उच्च शिक्षा में महिलाएँ – एक विश्लेषण

रश्मि श्रीवास्तव\*

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारे देश में बालिकाओं एवं स्त्रियों की शिक्षा की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। अनेक सरकारी व गैर-सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप बालिकाओं की शिक्षा में काफी सुधार हुआ है। विद्यालयी स्तर पर उनका नामांकन बढ़ा है, स्कूल बीच में छोड़ने वाली बालिकाओं की संख्या में निरंतर कमी आयी है तथा स्कूली प्रक्रिया में बालिकाओं की भागीदारी बढ़ी है। साथ ही ऐसी बालिकाओं (महिलाओं) का प्रतिशत भी बढ़ा है जो विद्यालयी शिक्षा पूरी कर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश ले लेती हैं। परन्तु महिलाओं की भागीदारी विज्ञान, तकनीकी तथा अन्य व्यवसायिक क्षेत्रों में बढ़ाने के लिए योजनाबद्ध प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

सन 2001 की जनगणना के अनुसार (इंडिया 2001) भारत में महिलाओं की जनसंख्या 40.71 करोड़ है जो देश की कुल आबादी का 48.10% है। अतः निश्चित ही उनका विकास व उन्नति विकासशील योजनाओं का प्रमुख मुद्दा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही महिलाओं की उन्नति, विकास योजनाओं का केंद्र बिंदु रही है। पिछले 60 वर्षों के दौरान इस संबंध में नीति निर्माण में कई परिवर्तन आए हैं जिसमें 70 के दशक तक कल्याण संकल्पना से 80 के दशक तक विकास की नीति और 90 के दशक में अधिकार पर जोर दिया है।

में स्त्री शिक्षा सर्वोपरि है। महिलाओं के स्तर को ऊँचा उठाने तथा परंपरागत रूढ़िवादी विचारों से मुक्त करने में उच्च शिक्षा को एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया है। सरला गोपालन (1996) ने अपने शोध पत्र में महिलाओं के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने में उच्च शिक्षा की भूमिका को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है।

यहां पर ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि महिला विकास एवं कल्याण संबंधी योजनाओं

आधुनिक व समृद्ध भारत के निर्माण हेतु समाज उद्योग व व्यापार क्षेत्र की बदली हुई आवश्यकताओं को देखते हुए उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी जरूरी मानी जा रही है, यही कारण है कि भारत सरकार उच्च शिक्षा के जरिए महिलाओं की दशा में परिवर्तन लाने

\*68 विजय नगर, कृष्णा नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

के लिए कटिबद्ध है जिससे विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर महिलाओं की दिशा में विविधता लाई गई है। महाविद्यालयों में छात्राओं के प्रवेश को सुगम बनाने की दिशा में महिला महाविद्यालयों की स्थापना पर विशेष जोर दिया गया है। पिछले कुछ वर्षों में महिला महाविद्यालयों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

तालिका 1

भारत में महिला महाविद्यालयों की संख्या

| वर्ष    | महिला महाविद्यालयों की संख्या |
|---------|-------------------------------|
| 1985-86 | 741                           |
| 1986-87 | 780                           |
| 1987-88 | 786                           |
| 1989-90 | 824                           |
| 1990-91 | 851                           |
| 1991-92 | 874                           |
| 1992-93 | 950                           |
| 1993-94 | 1103                          |
| 1994-95 | 1107                          |
| 1995-96 | 1146*                         |

\*प्रोविजनल

स्रोत: एनुअल रिपोर्ट यू.जी.सी. 1996 पृ. 139

**उच्च शिक्षा में महिलाओं की स्थिति :** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकारी व गैर-सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप बालिकाओं की शिक्षा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करके उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली छात्राओं का प्रतिशत उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।

तालिका 2 से ज्ञात होता है कि 1950-51 में जहाँ मात्र 40,000 महिलाएँ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नामांकित थीं वहीं 1995-96 में यह संख्या बढ़ कर 21,91,000 पर पहुँच गई है। उच्च शिक्षा में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी ने समाज तथा राष्ट्र में उनकी भूमिका को दृढ़ किया है।

तालिका 2

प्रति 100 पुरुष छात्रों पर महिला छात्राएँ (1996)

| वर्ष    | महिलाओं का कुल नामांकन (हजार में) | नामांकन (प्रति 100 पुरुष छात्रों पर) |
|---------|-----------------------------------|--------------------------------------|
| 1950-51 | 40                                | 14                                   |
| 1995-96 | 2191                              | 52                                   |

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न संकायों में महिलाओं के नामांकन (तालिका 3) पर एक दृष्टि डालने पर पता चलता है कि कला, वाणिज्य, विज्ञान, विधि, अभियान्त्रिकी तथा अन्य सभी संकायों में महिलाओं ने अपनी भागीदारी प्रदर्शित की है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विषय तथा पाठ्यक्रम चयन में स्त्री व पुरुष को समान दर्जा देते हुए कोठारी कमीशन ने सिफारिश की थी कि

“महिला विद्यार्थियों को कला, मानविकी, विज्ञान के पाठ्यक्रमों में मुक्त भाव से प्रवेश मिलना चाहिए, उनके विषय चुनाव

**तालिका 3**  
**विभिन्न संकायों में महिलाओं का नामांकन**  
**( 1995-96 )**

| क्रमांक | संकाय  | नामांकन          | प्रतिशत |
|---------|--|------------------|---------|
| 1.      | कला  | 11,91,774        | 54.39   |
| 2.      | वाणिज्य  | 3,09,834         | 14.14   |
| 3.      | विज्ञान  | 4,40,354         | 20.10   |
| 4.      | शिक्षा   | 85,699           | 3.97    |
| 5.      | विधि   | 39,551           | 1.80    |
| 6.      | अभियांत्रिकी/<br>तकनीकी  | 26,368           | 1.20    |
| 7.      | अन्य<br>( चिकित्सा,<br>कृषि, पशु<br>विज्ञान, संगीत<br>ललित कला,<br>समाज कार्य,<br>शारीरिक<br>शिक्षा आदि। | 97,562           | 4.40    |
|         | <b>योग</b>   | <b>21,91,138</b> |         |

स्रोत : एनुअल रिपोर्ट यू.जी.सी. 1995 पृ. 110  
एनुअल रिपोर्ट यू.जी.सी. 1995 पृ.110

को संकीर्ण बनाना अथवा उन्हें विशिष्ट पाठ्यक्रमों को लेने के लिए विवश करना गलत होगा।” अर्थात् आयोग महिलाओं के विषय चयन को संकीर्ण बनाना उचित नहीं मानता परंतु उच्च शिक्षा के विभिन्न संकायों में महिलाओं के नामांकन की स्थिति पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि भारत में महिलाओं द्वारा विषय चयन प्रक्रिया में संकीर्ण प्रवृत्ति का संचार हुआ है। तालिका 3 द्वारा पता चलता है कि वर्ष

1995-96 में उच्च शिक्षा में नामांकित छात्राओं में 54.39% छात्राएँ कला वर्ग, 20.10% छात्राएँ विज्ञान वर्ग तथा 14.14% छात्राएँ वाणिज्य वर्ग में नामांकित थीं। इसी प्रकार शिक्षा, विधि, अभियांत्रिकी/तकनीकी में क्रमशः 3.97%, 1.81% तथा 1.20% छात्राएँ नामांकित थीं। 4.40% छात्राएँ शिक्षा के अन्य संकायों में नामांकित थीं, जबकि विज्ञान तथा तकनीकी विषय वर्ग महिलाओं द्वारा उपेक्षित रहा। आज जब ज्ञान-विज्ञान के समस्त क्षेत्रों में वैज्ञानिक तकनीक तथा अभिवृत्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है, भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में इन विषयों का महिला विद्यार्थियों के लिए आकर्षण का प्रमुख केंद्र न बन पाना चिन्ता का विषय है। उच्च शिक्षा में नामांकित कुल 21,98,138 छात्राओं में से अधिकांश छात्राएँ (11,91,774) जहाँ कलावर्ग की हैं वहीं विज्ञान वर्ग में इनकी संख्या मात्र 4,40,354 है। अभियान्त्रिकी एवं तकनीकी क्षेत्र में मात्र 26,368 छात्राओं ने अपनी भागीदारी प्रदर्शित की है।

एक राष्ट्र का आर्थिक विकास औद्योगिकीकरण द्वारा होता है। विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के बिना औद्योगिकीकरण सम्भव नहीं है और बिना औद्योगिकीकरण के राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता। चूँकि भारत औद्योगिकीकरण द्वारा आर्थिक विकास कर रहा है अतः यहाँ विज्ञान व तकनीकी शिक्षा का विशेष महत्व हो जाता है। इस दशा में शिक्षित समुदाय के एक बड़े वर्ग का विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के प्रति आकृष्ट न हो पाना चिन्ता का विषय है। वज्जारत कौसर (1997) ने

इस दिशा में ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा भी है कि—

*“राष्ट्र के तकनीकी कार्यक्रमों की सफलता तथा उनके लक्ष्य प्राप्ति हेतु आवश्यक महत्वपूर्ण निवेशों में विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त श्रम शक्ति प्रमुख है, साथ ही विज्ञान एवं तकनीकी के माध्यम से राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक विकास को सम्भव बनाने में इसका अप्रत्यक्ष योगदान भी है।”*

सिंह तथा शर्मा (1995) ने पंडित जवाहरलाल नेहरू की आर्थिक विकास नीतियों के विश्लेषण में प्रति व्यक्ति उत्पादन क्षमता पर जोर देते हुए विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने उत्पादन क्षमता तथा शिक्षा के सही समन्वय को विकास का मूलाधार माना जो कि विज्ञान व तकनीकी शिक्षा द्वारा सही तरीके से स्थापित की जा सकती है। अतः भारत देश की श्रम शक्ति के इस बड़े समूह को विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के प्रति आकृष्ट न कर पाना शैक्षिक उद्देश्यों की असफलता भी है।

महिलाओं के स्वयं के जीवन स्तर में सुधार तथा परंपरागत रूढ़िवादी विचारों से उन्हें मुक्त कराने में भी विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा की अपनी महत्ता है। विभिन्न शोध परिणाम भी इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं। अंगिरा (1992) द्वारा स्नातक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के

विद्यार्थियों पर किए गए एक अध्ययन में कला वर्ग की तुलना में विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की आधुनिक अभिवृत्ति उच्च स्तरीय पायी गई। इसी प्रकार इस्लाम एवं सुधाकर (1997) द्वारा महाविद्यालयी छात्र-छात्राओं पर किए गए एक अध्ययन में भी कला वर्ग की तुलना में विज्ञान वर्ग की छात्र-छात्राएँ रूढ़िवादी विचारों से मुक्त एवं अधिक आधुनिक अभिविन्यरत पाई गई।

अतः भारत में महिला वर्ग की उन्नति, आधुनिक विचारधारा से उन्हें जोड़ने तथा राष्ट्रीय विकास, इन तीनों ही संदर्भों में महिलाओं को विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के प्रति आकृष्ट किए जाने हेतु व्यापक प्रयास किए जाने चाहिए। इस दिशा में किए जाने वाले प्रयास विद्यालयी स्तर पर ही प्रारंभ कर अधिक सार्थक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा की उन्नत व्यवस्था बालिका विद्यार्थियों में इन विषयों के चयन के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार इन विषयों में प्रवेश सुलभ होने की दशाएँ तथा शिक्षकों व अभिभावकों द्वारा प्राप्त दिशा-निर्देश भी इन संदर्भों में सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। विज्ञान एवं तकनीकी विषयों की उपयोगिता एवं रोजगार व व्यवसाय संदर्भों में इनकी महत्ता से छात्राओं को परिचित करा कर भी इन विषयों के प्रति आकृष्ट किया जा सकता है।

### संदर्भ

1. अंगीरा के.के. 1992. ऐजुकेशन सेक्स एण्ड मोडर्नाइजेशन : ए स्टडी इन ऐटीट्यूड्स मोडर्निटी, इंडियन साइकोलोजिकल रिव्यू, 38, 8-9, पृ. 33
2. एनुअल रिपोर्ट 1995. यू.जी.सी. नई दिल्ली, पृ. 110
3. एनुअल रिपोर्ट 1996. यू.जी.सी. नई दिल्ली, पृ. 138
4. गोपालन, सरला 1996. द इम्पावरमेंट ऑफ वूमन यूनिवर्सिटी न्यूज़, जर्नल ऑफ हायर ऐजुकेशन, नई दिल्ली, xxxiv, 13, मार्च 25, पृ. 17
5. इंडिया 2001 (ए रिफरेन्स मेनुअल) मिनिस्टरी ऑफ इन्फॉर्मेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 230
6. इस्लाम, सिराजुल और सुधाकर, एम.ए. 1997. स्टडी ऑफ सोशल ऐटीट्यूड एण्ड वेल्यूज़ ऑफ कॉलेज स्टूडेंट इन सोशियो पर्सपेक्टिव जर्नल ऑफ इनसाइट इन ऐजुकेशन फॉर सोशल चेंज, कश्मीर यूनिवर्सिटी, ऐजुकेशन डिपार्टमेंट, 4.1 पृ. 61-66
7. कौसर वज्जारत 1997. स्टेटिस्टिकल प्रोफाइल ऑफ इंडियन वोमेन इन द टेक्नीकल फील्ड, यूनिवर्सिटी न्यूज़ 35, (23) जून, पृ. 13
8. शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1964-66. शिक्षा मंत्रालय गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 356
9. सिंह, डॉ. एन.पी. और शर्मा मीना 1995. द वोकेशनल डोमेन ऑफ ऐजुकेशन : नेहरूज़ परसेप्शन, इंडियन साइकोलोजिकल रिव्यू, 44, 1-2, पृ. 33
10. विश्व ज्ञान संहिता 1976. सब्जेक्टवाइज़ हिंदी इंसाइक्लोपीडिया, (सोशल साइंस), हिंदी विकास समिति, मद्रास, पृ. 1976



## अध्यापक के पर्याय

ऋतु भारद्वाज\*

---

समाज में जब भी बदलाव आता है शिक्षा के साथ शिक्षक की भूमिका में भी परिवर्तन आता है। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में गुरु की महत्ता तो निर्विवाद रूप से रही है। प्रत्येक काल में यह मौजूद थी, इस महत्ता में यदि फर्क पड़ा है तो वह इस भूमिका के निर्वाह को लेकर ही पड़ा है कि कितनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से शिक्षकों ने इसे निभाया है। समय की गति कितनी भी तीव्र क्यों न हो जाए शिक्षा में उसकी भूमिका को नकार पाना अंसभव होगा।

---

मनुष्य को प्रकाशवान, जागरूक, समाजोपयोगी बनाने में प्रत्येक युग में शिक्षा की अपनी अहम भूमिका रही है। प्राचीन समय में भारत तथा अन्य देशों में विभिन्न दार्शनिकों (सुकरात आदि) का नगर के गली, चौराहों पर युवकों को शिक्षा के विषय में जिज्ञासु बनाकर उन्हें सोचने और समझने के लिए प्रेरित करना, खुली शिक्षा व खुले विद्यालयों द्वारा विभिन्न प्रकार से दिए जाने वाली ज्ञान की प्रक्रियाएँ अब बंद विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा आधुनिक शिक्षा के एक बंधे कार्यक्रम में हमारी समस्त चेष्टाओं के बाद भी सीमित होकर रह गई हैं। इन बंद विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में निश्चित समय में निश्चित व्यक्तियों द्वारा, निश्चित पाठ्यक्रम को पूरा करने

के लिए, जिन व्यक्तियों को निश्चित किया जाता है, इनका पद प्राचीन समय की अपेक्षा कम गौरवास्पद हो गया। उनकी आलोचनाएँ होती हैं तरह-तरह के दोषारोपण किए जाते हैं कि विद्यालयों में पढ़ाते नहीं, ट्यूशन करते हैं। अपने घर के आस-पास अपना स्थानांतरण कराकर अपने घर-परिवार की देखभाल करते हैं या कृषि संबंधी कार्यों को पूरा करते हैं और जो घर से दूर रहते हैं तो उनके लिए कहा जाता है कि आए दिन छुट्टी पर रहते हैं और जब वह अपने घर-परिवार या कृषि संबंधी कार्यों की उचित रूप से देखभाल नहीं कर पाते हैं तब वह अपनों को उच्च श्रेणी में रखने के लिए ट्यूशन करते हैं तो वे समाज की नज़रों में और भी हीन समझे

---

\*अध्यापिका, पुत्री श्री महेश प्रकाश शर्मा, खरखौदा (रोडवेज बस स्टैंड के पीछे), मेरठ. 245206, उ.प्र.

जाते हैं। समाज उन व्यक्तियों को तो हेय दृष्टि से नहीं देखता जो रिश्वतखोरी के बल पर बिना श्रम किए सभी भौतिक सुविधाओं से संपन्न होते हैं किंतु एक अध्यापक की परिश्रम की अर्जित की हुई धनराशि पर अवश्य प्रश्नचिन्ह लगाकर देखता है। समाज तो क्या आज सरकार भी अध्यापक के इस परिश्रम को अपनी अंतर्दृष्टि से नहीं देख पाई और उसने भी अध्यापक के इस ओवरटाईम पर रोक लगा दी। इस संदर्भ में डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, कलेक्टर, पुलिस उच्चायुक्त, व्यापारी, राजनीतिज्ञ इत्यादि अन्यो के जनक शिक्षक के बदलते परिवेश एवं परिस्थिति में बदलते पर्याय का समालोचनात्मक रूप संभवतः यहाँ स्पष्ट हो—

### प्राचीन भारत में अध्यापक की स्थिति

भारतीय जीवन में गुरु का स्थान अत्यधिक गौरवपूर्ण रहा है। सरस्वती के पावन मंदिरों को 'गुरुकुलों' की संज्ञा से व्यक्त किया है। हमारे ऋषियों ने गुरु को त्रिदेवों से महान परब्रह्म के रूप में नमस्कार करने की बात कही है।

*\*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।  
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥*

संत कबीर ने गुरु की महिमा को और भी अधिक आगे माना है। गुरु और गोविंद की श्रेष्ठता में उन्होंने गोविंद के दर्शन कराने वाले 'गुरु' को अधिक श्रद्धा प्रदान करके संसार में गुरु की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि

*गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाया।  
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताया॥*

वास्तव में गुरु कौन होता है? इस प्रश्न का उत्तर हमें आंग्ल भाषा में दी गई परिभाषा से मिल जाएगा। मानक को 'मानव' रूप प्रदान करने वाला व्यक्ति ही गुरु है।

संस्कृत साहित्य में भी इसका अर्थ विशिष्ट भाव निर्मित है, जो अज्ञान को दूर करके धर्म का उपदेश देता है, वही गुरु कहलाता है। प्राचीन समय में जो व्यक्ति किसी प्रकार से, किसी भी क्षेत्र में मानव को सुसंस्कृत बना सके, वही गुरु पद से विभूषित होता था। यद्यपि मानव, जीवन में स्वाध्याय द्वारा भी ज्ञान ग्रहण करता है, परंतु स्वाध्याय की प्रधानता होते हुए भी उसे आत्मा साक्षात्कार ज्ञान तथा अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए गुरु की आवश्यकता तो होती ही है।

### वैदिक काल

वैदिक काल में अध्यापक का कार्य धनार्जन के लिए नहीं होता था। इस युग का आचार्य अपने भरण-पोषण की चिंता किए बिना नदी के जल तथा सूर्य के प्रकाश की भाँति अपने ज्ञान का आलोक समाज में बिखेरता था तथा हजारों चिरागों को रोझनी बाँटकर उन जिज्ञासुओं को नई दृष्टि देता था, जो कि शिक्षक द्वारा दिखाए रास्ते पर चलकर राष्ट्रोत्थान या लोकमंगल के लिए जीवन कार्य में उतरते हैं। व्यक्ति निर्माण की इस अनुपम सेवा के लिए हमारा प्राचीन

राज्य एवं समाज भी शिक्षक की इस अद्भुत प्रतिमा के सम्मुख सदैव सम्मान एवं श्रद्धा से नतमस्तक होते रहे हैं (मनुस्मृति)। इस प्रकार, शिक्षक (आचार्य) का व्यक्तित्व गौरवपूर्ण था। इसका उल्लेख करते हुए वैदिक साहित्य में कहा गया है कि –

“अध्ययन और अध्यापन दोनों ही आनंद के निस्यंद हैं, मन मुक्त हो जाता है, स्वतंत्र होकर व्यक्ति समृद्धि पाता है और वह शांति से सोता है (शतपथ ब्राह्मण 11.5)। ‘शिक्षक’ और ‘गुरु’ शब्दों में व्यापक अंतर नहीं है, शिक्षक शिक्षा देता है शिष्य उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान में अच्छा, बुरा, सही, गलत का अनुमान लगाता है, किंतु ‘गुरु’ मंत्र देता है, वह शिष्य के हृदय में शक्ति का निपात करता है, जिसके प्रकाश से उसका हृदय आलोकित होता है। उसे स्वतः ही सत्य-असत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जब शिष्य की प्रज्ञा जाग जाती है और कुण्डलिनी उर्ध्वाभिमुख हो चलती है तब गुरु और शिष्य में जीवन तथा ईश्वर एवं आत्मा-परमात्मा की भाँति कोई अंतर नहीं रह जाता है।”

उपनिषद काल में आचार्य प्रायः महर्षि थे। साधारण आचार्य विनयी थे। ‘आचार्य’ शब्द की व्युत्पत्ति निरुक्त में ‘आचार’ शब्द से बतलाते हुए कहा गया है कि ‘आचार’ को ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही आचार्य है। प्रायः विद्यार्थियों को सदाचारी बनाने के लिए आचार्य का उपदेश

पर्याप्त होता था (चुलनन्दिय जातक 222, तिलमुट्टि जातक 2369)। उस युग का आचार्य सत्यनिष्ठ होता था, इसी आधार पर वह अपने स्नातक को सारगर्भित उपदेश भी देता था। (सत्यंवाद, धर्मचर)। यान्यनबर्धान, कार्याण तीनि सेवितव्यामि (कठोपनिषद-1.9)। उपनिषद कालीन आचार्य का व्यक्तित्व मधुर था, उसकी वाणी मधुर थी, वह अपने ज्ञान की निर्झरिणी स्वान्त सुखायः एतत् प्रवाहित रखना चाहता था। आचार्य की धारणा थी कि व्यक्तित्व के विकास के लिए स्वाध्याय और प्रवचन समान रूप से आवश्यक है तथा वह कामना करता था कि उसका तथा उसके शिष्य का अध्ययन तेजस्वी हो। इस युग में साधारणतः शिक्षक ब्राह्मण ही थे। पर कुछ क्षत्रिय राजा भी उस समय उच्चकोटि के दर्शन के विद्वान थे तथा उनके पास भी अध्ययन के लिए ब्राह्मण विद्यार्थी जाते थे।

इस काल में यद्यपि स्वाध्याय का विशेष प्रचलन था तथा विद्यार्थी के लिए शिक्षक की आवश्यकता भी प्रतीत होती थी। कठोपनिषद में गुरु का अस्तित्व अनिवार्य बताया है तथा उसका पूर्ण ज्ञानी, सर्वदृष्टा तथा ब्रह्मा में निवास करने वाला होना आवश्यक था, तभी वह अपने शिष्य को अतर्चक्षु प्रदान कर आध्यात्मिक जीवन देता था, वह समाज का पथ प्रदर्शक, नेता तथा निर्णायक माना जाता था। उपनिषदों में ऐसे देवतुल्यगुरु के लिए ‘श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ’ इन दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है जो कि गुरु की कोटि से उत्कृष्ट देवत्व के आसन पर आसीन कराते हैं।

सूत्रकाल में अध्यापक की स्थिति वैदिक तथा उपनिषद् काल जैसी ही रही। उस समय भी अध्यापक गौरवास्पद पद पर आसीन रहा तथा राज्य के लिए आदर्श रूप में सम्मानीय था लेकिन ऋग्वेद की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में गुरु की प्रतिष्ठा कर्मकाण्डजन्य अहं की भावना विकसित होने के कारण उतनी निस्पृह तथा अक्षुण्ण न रह सकी। 'आपस्तम्भधर्मसूत्र' में अनुभवी तथा समर्थ छात्रों को शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण कार्य संभालना पड़ता था अर्थात् 'बालचर प्रणाली' भारतीय शिक्षण पद्धति में प्राचीन काल से व्यक्त होती रही है।

वैदिक काल में हमें चार प्रकार के अध्यापक देखने को मिले, जो ब्राह्मण अपने शिष्य को कल्प और रहस्य से युक्त वेद पढ़ाता था, वह उपाध्याय कहा जाता था। जो अपने शिष्य के सभी-संस्कार करता था तथा अन्नादि से उसका पोषण करता था, वह 'गुरु' पद से विभूषित होता था और जो अग्नयाज्ञान तथा अग्निश्टोम आदि के लिए वरण किया जाता था वह 'ऋत्विक्' कहलाता था। इन सभी के महत्व का क्रम बताते हुए कहा गया है कि 'उपाध्याय' से दस गुना 'आचार्य', आचार्य से सौ गुना 'पिता' और 'पिता' से सौ गुना 'माता' श्रेष्ठ होती है तथा उत्पन्न करने वाले पिता की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान देने वाला 'गुरु' पिता से अधिक श्रेष्ठ होता है।

इसके अतिरिक्त उपनिषदों में महिला अध्यापिकाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो कि 'ब्रह्मवादिनी' कहलाती थीं। इस प्रकार प्राचीन भारत का अध्यापक बिना शुल्क लिए ही इतने

महत्वपूर्ण एवं सम्मानित पद पर आसीन था कि उसके लिए कोई भी भौतिक वस्तु अलभ्य नहीं थी। भारतीय समाज के विचारक सदा प्रयत्नशील रहते थे कि अर्थाभाव के कारण कहीं शिक्षक के अध्यापन में बाधा उपस्थित न हो और उसको अपना कार्य स्थगित न करना पड़ जाए। शिक्षक की अर्थव्यस्था का ध्यान समाज को सदैव बना रहता था तथा शिक्षक समाज में पूज्य समझा जाता था। रामायण तथा महाभारत-प्राचीन भारत के प्रमुख महाकाव्य हैं जिन के अध्ययन से हमें भारतीय संस्कृति का स्वरूप देखने को मिलता है। महाभारत में 'आचार्य' और 'उपाध्याय' का अंतर स्पष्ट नहीं है। रामायण में कहीं-कहीं शुक्राचार्य को उपाध्याय कहा है (अरण्यकाण्ड, बा. रामायण सर्ग 11-12)। महाभारत काल में भी उच्च कोटि के आचार्य वेतन लेकर वेदाध्ययन नहीं कराते थे और यदि वह ऐसा कार्य करते थे तो बिना प्रायश्चित्त किए उनकी शुद्धि नहीं हो सकती थी (शांतिपर्व 33.36)। जो राजकुमारों को शिक्षा देते थे उनको 'कारणिक' उपाधि से विभूषित किया जाता था। वे आचार्य धर्म एवं अन्य शास्त्रों के भी कोविद होते थे (सभापर्व 5.33)।

व्याकरण साहित्य में पाणिनी और पतंजलि दो प्रमुख स्तम्भ हैं। उन्होंने अपने व्याकरण साहित्य के सूत्रों में तात्कालिक स्थितियों का भी वर्णन किया है, जिसके आधार पर हम गुरु की स्थिति का पता लगा सकते हैं। दोनों के मत में शिक्षक के बारे में साधारणतः समानता है किंतु वर्णन में अंतर है। पाणिनी के अनुसार—

“शिक्षक अपने शिष्य को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होता था’ तो पतंजलि के अनुसार, ‘उनका उद्देश्य छात्रों को दुर्गुणों से मुक्त कराना था।”

पाणिनी ने 4 प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है। ‘आचार्य’, ‘प्रवक्ता’, ‘श्रोत्रिय’ और ‘अध्यापक’। इनमें ‘आचार्य’ का स्थान सर्वोच्च था। महाभारत में इन चारों का महत्व मिलता है।

वेदाध्ययन में महाभारत में तीन कोटियाँ बताई गई हैं— छन्दोवित, वेदवित और वेद्यवित। मध्यम कोटि के विद्वान वेदवित होते थे और वेद्यवित ही ‘आचार्य’ कहलाते थे। महाभारत में प्रवक्ता को ‘आख्याता’ भी कहा है। यही आख्याता कहीं-कहीं वेदवित से भी विभूषित हुए हैं। श्री नत्थू लाल गुप्त द्वारा ‘प्राचीन भारतीय शिक्षा और शिक्षा शास्त्री’ ने महाभारत कालीन आचार्य को आत्मवित या ब्रह्मवित कहा है। ‘श्रोत्रिय’ तृतीय श्रेणी के अध्यापक माने जाते थे। महाभारत में ये ‘बहुपाठी’ या ‘छन्दोवित से जाने जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाभारत में उल्लिखित वेद्यवित, वेदवित, छन्दोवित (बहुपाठी) क्रमशः पाणिनी द्वारा उल्लिखित आचार्य, प्रवक्ता और श्रोत्रिय थे। चौथी श्रेणी उन शिक्षकों की थी जो लौकिक अथवा वैज्ञानिक विषयों का अध्यापन करते थे। ये अध्यापक कहलाते थे। सामान्यतः दोनों के साहित्य में वैदिक युगीन शिक्षक की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। महाभाष्य में ‘आचार्य’ और ‘प्राचार्य’ सर्वोच्च अध्यापक माने जाते थे। इनके नीचे ‘गुरु’ और ‘उपाध्याय’ होते थे। उपाध्याय के यहाँ विद्यार्थी अपने घर से आकर

पढ़ते थे तथा ‘गुरु’ के यहाँ विद्यार्थी अंतेवासित होकर पढ़ते थे। पाणिनी और पतंजलि ने आचार्य कोटि को ही समुज्ज्वल बताया है। ‘शिक्षक’ धनुर्वेद आदि व्यवसायिक विषयों की शिक्षा देते थे। ‘गुरु’ पद विशेष समावृत था। महाभाष्य के अनुसार कुछ अध्यापक वेतन भी लेने लगे थे। इसके अतिरिक्त व्याकरण साहित्य में अध्यापक को भिन्न-भिन्न योग्यताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न संबोधनों द्वारा संबोधित किया गया है।

‘आचार्य’ उच्च कोटि के विद्वान तथा मौलिक विचारक होते थे। ‘गुरु’, ‘शिक्षक’ और ‘उपाध्याय’ की योग्यता तथा विचारशैली अर्थात् शास्त्रार्थ आदि में एवं छात्रों को स्पष्टीकरण करने की शैली या समसाम्य या उच्च होने पर उपाधि से अलंकृत किया जाता था।

ब्रह्मवादिन – जो धार्मिक साहित्य की व्याख्या करने में संलग्न रहते थे।

परिव्राजक – जो अपने जीवन के अंतिम चरणों में घूम-घूम कर शिक्षा प्रसार में योग देते थे। ये परिव्राजक भी दो प्रकार के होते थे—

(क) जो जनसमूहों से दूर रहते थे उनको ‘आरण्यक’ कहा जाता था।

(ख) जो ग्रामवासियों के निकट विचरण करते थे, उनको ‘नैकटिक’ कहा जाता था।

ये सभी प्रकार के आचार्य अपने आश्रम स्थापित करते थे। प्रायः सभी प्रकार के शिक्षकों का साधारण नाम ‘उपाध्याय’ भी था। ‘पौराणिक युग’ में अध्यापकों की स्थिति वैदिक कालीन जैसी ही रही। ‘मत्स्यपुराण’ के अनुसार ‘आचार्य’ पद का स्वामी वही हो सकता था जिसमें अग्रांकित

योग्यताएं हों—‘जो अवस्था में वृद्ध हो, निर्लोभ, आत्मज्ञानी, अदाम्भिक, अतिविनम्र तथा मृदु स्वभाव वाला व्यक्ति हो। (मत्स्य पुराण, 145.25 अध्याय)।

इस युग में विद्यादान के द्वारा ही आचार्य के स्वर्ग या मोक्ष पाने की धारणा थी अर्थात्- गुरु का मानना था कि विद्यादान के समक्ष सभी दान तुच्छ हैं यदि व्यक्ति विद्या का दान करता है तो उसे निश्चित रूप से स्वर्ग की अथवा मोक्ष की प्राप्ति होगी (पद्मपुराण, उत्तराखण्ड, 117 अध्याय)।

इस प्रकार हम अनुमान लगा सकते हैं कि महाकाव्य तथा व्याकरणिक काल में भी अध्यापक की स्थिति लगभग उत्तर वैदिक काल, सूत्रकाल एवं ब्राह्मणकाल का समावेश करती हुई वैदिक काल के समान गौरवशाली व सम्मानीय बनी रही। अध्यापक के संबंध में दिए गए विभिन्न पर्याय समानार्थक प्रतीत होते हैं।

### बौद्धकालीन अध्यापक

बौद्ध धर्म में बाह्य प्रकरणांक की अपेक्षा आत्मज्ञान पर बल दिया गया। इसके प्रवर्तक महात्मा बुद्ध कहे जाते हैं। इस धर्म की व्यवस्था का वर्णन चीनी यात्री फाह्यान, हुएत्सांग तथा इत्सिंग ने अपनी-अपनी पुस्तकों में विस्तार से किया है। बौद्ध कालीन शिक्षा का विकास संघों के रूप में हुआ। संघ द्वारा ही गुरु और शिष्य के कर्तव्य निर्धारित किए जाते थे। शिष्य का पूर्ण उत्तरदायित्व गुरु पर आश्रित होता था। उपाध्याय को शिष्य को पुत्र की भाँति रखना होता था। शिष्य की शिक्षा, शारीरिक विकास तथा आवश्यकता पड़ने पर भिक्षाटन के लिए पात्रादि का प्रबंध गुरु ही

करता था। संघ की मर्यादा या बनाए हुए नियम का यदि गुरु उल्लंघन करता था तो गुरु के लिए उचित दण्ड की व्यवस्था करवाना शिष्य का कर्तव्य होता था। इसके विपरीत गुरु को भी निश्चित अवस्थाओं में शिष्य के निष्कासन का अधिकार था। गुरु बहुत सादगी के साथ जीवन व्यतीत करते थे और शिष्य के समक्ष अपना आदर्श उपस्थित करते थे गुरु की आवश्यकताएँ न्यूनतम होती थीं, अध्यापकों के खर्चे के लिए भिक्षान्न के अतिरिक्त धनिक लोगों की ओर से स्थायी आर्थिक सहायता की व्यवस्था थी। शिष्य से उच्च सम्मान प्राप्त करने के लिए गुरु को एक महान उच्च चरित्र, आत्म संयमी तथा आत्मदर्शी होने की आवश्यकता थी। इस युग में अध्यापक के लिए ‘आचार्य’ और ‘उपाध्याय’ तथा ‘गुरु’ का प्रयोग किया है। किंतु योग्यता के आधार पर इनका वर्गीकरण नहीं बताया है। अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है कि ‘श्रमण अपने उपाध्याय के साथ ही भिक्षा के लिए जाते थे। जिससे इंगित होता है कि ये ‘उपाध्याय’ ही उत्तरवैदिक काल में वर्णित परिव्राजक की द्वितीय श्रेणी के ‘नैकटिक’ होते होंगे, जोकि भिक्षाटन एवं देशाटन से शिक्षा का प्रसार करते थे।

इसके अतिरिक्त, इस युग में ‘बालचर-प्रथा’ की भी प्रधानता थी, इससे योग्य छात्रों को विकास का अवसर एवं उत्तरदायित्व संभालने का प्रशिक्षण मिलता था, जिसके फलस्वरूप वे जीवन में भली-भाँति सफल हो सकते थे। यहाँ शिष्य को भी गुरु का ही स्थान प्राप्त था। अंतर

केवल आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर का था। अध्यापक जीवनपर्यन्त अध्ययन और अध्यापन में तल्लीन रहता था तथा मनोयोगपूर्वक बौद्ध दर्शन से संबद्ध साहित्य का ही संवर्धन करता था।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि बौद्धकाल में अध्यापक का स्थान उतना उच्च तो नहीं रहा जितना कि वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, सूत्रकाल, महाकाव्यकाल या व्याकरणिक काल में था। अपेक्षाकृत उसे शिष्य के लगभग ही रखा गया है। अंतर केवल 'आध्यात्मिक ज्ञान' के आधार पर ही दर्शित होता है।

इसके साथ ही जैन धर्म में परवर्ती युग में आचार्य और उपाध्याय की दो कोटियाँ रखी गई हैं। जिसमें आचार्य का पद निर्धारित करते हुए कहा है कि यह वह 'मुनि होता है जो अपने आचारों, दर्शन, ज्ञान, वीर्य, चरित्र और तप से दूसरों को समन्वित कर देता है।' उपाध्याय वह है 'जो स्वयं में तीन रत्नों-सम्यकज्ञान, दर्शन और चरित्र से युक्त होता है और नित्य धर्मोपदेश देने में तत्पर रहता है' (प्रव्य संग्रह 32,52-53) कहा जा सकता है कि बौद्ध तथा जैन युग में अध्यापक बहुत कुछ प्राचीन संस्कृति से प्रभावित था।

### मध्यकालीन अध्यापक

मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा में भी लगभग गुरु का पूर्ववत् सम्मान किया जाता था, विद्यार्थी द्वारा ही नहीं वरन् समाज द्वारा भी शिक्षक समादरित था। लोगों का विश्वास था कि सच्चा ज्ञान गुरु के बिना संभव नहीं है। अतः श्रद्धा का

पात्र गुरु विद्यार्थियों का पूज्य बन जाता और इस गुरु के आदर का परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों में अनुशासन की कमी नहीं रहती थी। विद्यार्थी स्वतः विनम्र और कर्मनिष्ठ बन जाता था।

'शिक्षक' और 'गुरु' में दुराव का भाव नहीं था। मुस्लिम शिक्षा में अध्यापक के लिए मुल्ला, मौलवी तथा उस्ताद शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अनेक स्थलों पर वर्णन किया है कि मुल्ला केवल व्यवहारिक ज्ञान को छोड़कर व्याकरण संबंधी, पाठ्यक्रमीय ज्ञान ही देते थे। उस्ताद अनुमानतः उन्हें कहा जाता होगा, जो हस्तकला तथा ललितकलाओं की शिक्षा देते थे तथा सामान्य ज्ञान की शिक्षा देते थे। मुस्लिम शिक्षा पद्धति में मौलवी का स्थान सर्वश्रेष्ठ वर्णित किया गया है। यह शिक्षक धार्मिक, लौकिक तथा अन्य सभी प्रकार का ज्ञान अपने शिष्य को देता था। इस समय में मकतब व मदरसों के संचालन का कार्य शिक्षक पर निर्भर रहता था। इस्लाम धर्म में इस्लामी शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया गया और विद्वानों का सर्वाधिक सम्मान करने का निर्देश दिया गया है। हज़रत मुहम्मद के दामाद और इस्लाम धर्म के महान प्रवर्तक हज़रत अली ने कहा था, कि मैं उस व्यक्ति का दास हूँ, जिसने मुझे मात्र एक अक्षर का ज्ञान दिया। इसलिए सभी मुस्लिम शासकों ने शिक्षकों को समुचित आदर प्रदान करके उन्हें अपने-अपने शासन काल में उच्च सामाजिक स्थान दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार एफ.ई.की. ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'मुस्लिम काल में शिक्षकों का सामाजिक



स्तर ऊँचा था और वे सामान्यतः चरित्रवान व्यक्ति होते थे, जिन्हें सर्वसाधारण का विश्वास एवं आदर प्राप्त था।' इतना सब होते हुए भी प्रतीत होता है कि मुस्लिम काल में आगे चलकर शिक्षक का स्थान इतना उच्च नहीं रह गया था जितना प्राचीन काल में था। एफ.ई.की. ने अपनी पुस्तक में प्रसिद्ध यात्री बर्नियर का उद्धरण दिया है जिसमें औरंगजेब द्वारा अपने मुल्ला (गुरु) को दोषपूर्ण शिक्षा देने के लिए बुरा भला कहे जाने का किस्सा है। मुगल काल में भारतीय विद्वान अध्यापक भी शिक्षा देते थे। कई विद्यालयों में विदेशी विद्वान अध्यापक भी कार्य करते थे। औरंगजेब के समय में वैदिक काल से चली आ रही गुरु प्रणाली तथा शिक्षा को समुचित आदर न मिलने से हास हुआ।

इस प्रकार न तो इस्लामी शिक्षा ही मुस्लिम काल में उच्च स्थान पा सकी और ना ही यह शिक्षा देने वाला शिक्षक ही। साथ ही विद्यार्थियों में गुरु के लिए वह बलिदान की भावना न रह गई थी जो हमें भारतीय प्राचीन शिक्षा परंपरा में अनेक स्थानों पर देखने को मिलती है। औरंगजेब ने भरे दरबार में अपने गुरु को अपमानित करके इस बात को सिद्ध कर दिया कि राज्यभिमानी शासक गुरु के स्थान से अपना स्थान बढ़कर समझता है।

### आधुनिक कालीन अध्यापक

ब्रिटिशकाल में अंग्रेजी साम्राज्य होने से भारत में अंग्रेजी के प्रसार एवं प्रचार के लिए अनेक मिशनरी स्कूल खोले गए, जिसमें आंग्ल भाषा मुख्य होने तथा अंग्रेजी अध्यापकों का होना

स्वाभाविक था। साथ ही भारतीय प्राचीन संस्कृति को जीवित रखने के लिए तथा पाठ्यक्रम में हिंदी तथा संस्कृत भारतीय भाषाओं को गौण स्थान प्राप्त होते हुए भी इन भाषाओं का ज्ञान भारतीय शिक्षकों द्वारा प्राप्त कराना भी स्वाभाविक ही था। अपने उच्च आसन से उतरकर वेतनभोगी बन जाने पर भी भारतीय शिक्षक ने अपने परंपरागत आदर्श लंबे समय तक नहीं छोड़े और वह अपने शिष्यों तथा सर्वसाधारण का भी श्रद्धा का पात्र बना रहा जिसकी झलक वर्तमान में मात्र औपचारिक रहने पर भी मिल जाती है। यदि प्राचीन काल में द्रोण, कपिल, गौतम, विश्वामित्र जैसे महान गुरु भारत में हो गए हैं तो वर्तमान काल में भी गोखले, तिलक, टैगोर, डॉ. राधाकृष्णन तथा डॉ. जाकिर हुसैन आदि शिक्षकों ने कम गौरव प्राप्त नहीं किया है (शिविरा)। भारतीय शिक्षकों में त्याग तथा आर्शीवाद की जड़ें इतनी गहरी पहुँच चुकी थीं कि उन्होंने भौतिक कठिनाइयों के बढ़ते जाने पर भी इस मार्ग को नहीं छोड़ा और यथाशक्ति 'सादा जीवन, उच्च विचार' के आदर्श पर दृढ़ रहे। जहाँ एक ओर शिक्षकों को भौतिक पक्ष की ओर अधिक ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ा और वे आय के अतिरिक्त स्रोतों के चक्कर में अपने उच्च आदर्शों को ढील देने लगे, वहाँ दूसरी ओर समाज के अधिकांश वर्गों के लिए उनकी आय के साधन बढ़ती हुई भौतिक आवश्यकताओं की दृष्टि से अल्प प्रतीत होने लगे।

बृहस्पति संहिता के अनुसार, प्राचीन समय में शिक्षक की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति



करने में समाज स्वयं को सम्मानित एवं अनुगृहीत करता था। अभिभावकों को भी यह ध्यान रखने को कहा जाता था कि 'उनके बालकों को मात्र एक अक्षर का ज्ञान देने वाले अतिसामान्य शिक्षक को विश्व की बहुमूल्य वस्तु देना भी समुचित शुल्क नहीं समझा जा सकता। 'ए.एस.अल्तेकर: एजुकेशन इन एंशिप्ट इण्डिया) शिक्षक के क्षेत्र में यही भावना वैदिक काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक बनी रही। इस प्रकार भारतीय समाज के मन में इस तर्क ने भी जन्म ले लिया कि जब शिक्षक को वेतन मिलता है तो यह अतिरिक्त सेवा क्यों की जाए? जिसके परिणामस्वरूप शिक्षक की परंपरागत प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचा।

स्वतंत्रता के पश्चात् का समय शिक्षक की सामाजिक प्रतिष्ठा के उत्तरोत्तर पतन की कहानी ही बन गया। परिणामतः स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि एक समय में भगवान के समकक्ष समझे जाने वाले भारतीय शिक्षकों को 1968 में दिल्ली में की गई हड़ताल के समय 'सार्वजनिक कर्मचारियों का बेईमान वर्ग' तक कह दिया गया (सरिता, मार्च 1968)। यह स्थिति स्वयं शिक्षक ने ही उत्पन्न की है। आज वह नारेबाजी, रैली निकालने तथा हड़ताल करने से बिलकुल नहीं हिचकिचाता, अध्यापन को व्यवसाय मानकर चलता है। प्राचीन समय की सी शांतिप्रियता अब उसके लिए केवल नक्राब बनकर रह गई है जिसे वह किसी भी क्षण हटा सकता है। आज का शिक्षक बेईमान हो या न हो परंतु अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन तो अवश्य है। अध्यापक

एक अग्निपथ के समान है यदि सुंदर और समृद्ध समाज का निर्माण करना है तो शिक्षक को आलसी लिपिक, हड़ताली, श्रमिक एवं भ्रष्ट अधिकारियों के पद चिह्नों पर न चलकर अपना एक अलग ही रास्ता चुनना होगा। जिस पर त्याग तपस्या एवं उच्चादर्शों के पत्थर लगे होंगे। उसे सेना के एक जवान की भाँति अपने जीवन को तुच्छ समझने की जगह शुद्ध शिक्षण के लिए अपनी सुख-सुविधाओं एवं आर्थिक सुविधाओं की आवश्यकताओं का बलिदान करना होगा तभी एक नए युग का निर्माण होना संभव हो सकेगा। वह मानवता का आशा केंद्र है। वह विश्व शांति की एक मात्र आशा है। शांति की शक्तियों का प्रतिष्ठाता है। अतः इस कटीले मार्ग में उसकी कठोर साधना उसका बल है। आत्मसंयम, विद्वता, त्याग एवं तपस्या ही उसकी पूँजी है जो उसे उसके उपयुक्त पथ की ओर अग्रसर करने में सहायक हो सकती है। यह आदर्श यद्यपि बहुत ऊँचा है किंतु अध्यापक पद भी तो कम ऊँचा नहीं है। आधुनिक शिक्षक पद अपने गौरवशाली अतीत से प्रेरणा लेकर आगे बढ़े और वर्तमान की पृष्ठभूमि में अपने दायित्व को समझ ले तो यह निश्चित है कि भविष्य का निर्माण उसके द्वारा ही होगा। वर्तमान में यह स्थिति और भी नाजुक हो गई है। आज के शिक्षा जगत में उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर होने के साथ-साथ कुछ समस्याएँ भी प्रकट हो गई हैं जो उसके कर्तव्य में बाधा डालती हैं। उसके पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन में कुछ समस्याएँ ऐसी उत्पन्न हो जाती हैं जो अनिवार्य

उपलब्धियों को निराकार व उपेक्षित कर देती हैं। व्यक्तिगत जीवन में कुछ शिक्षकों के लिए, समुचित वातावरण का अभाव खटकता है फिर भी कुछ ऐसी त्रुटियाँ रह जाती हैं जिनका समाज में कोई विकल्प नहीं है यह अध्यापक की ओर से भी होती है और समाज की ओर से भी। अतः यह एक अग्रगामी, उत्साही एवं श्रमनिष्ठ शिक्षक के लिए उसी के अनुरूप वातावरण मिलना अत्यंत आवश्यक है।

### वर्तमान सामाजिक स्थिति

किसी भी समाज के आधार स्तम्भ शिक्षक ही होते हैं, उन्हीं के विवेक, कर्तव्य-परायणता, आदर्शोन्मुखता जैसे सद्गुणों से ही समाज का कायाकल्प हो सकता है। इसके विपरीत जिस समाज में शिक्षक वर्ग उदासीन होकर आलसी हो जाता है वह समाज शीघ्र ही अस्त-व्यस्त पत्तोन्मुख हो जाता है। विश्व का इतिहास इसका प्रत्यक्ष साक्षी है। शिक्षकों ने सदैव समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में योगदान दिया है। भारत का अतीत तो इसका ज्वलंत उदाहरण है। आज की तुलना में उस पीढ़ी के शिक्षक अधिक साधन-विहीन थे, लेकिन साधनों के अभाव के बिना भी वह शिक्षा के माध्यम से ऐसा और इतना विस्मयकारी परिवर्तन ला सके थे जिसके लिए हम आज भी तरस रहे हैं। महात्मा गाँधी ने जो काम राजनीति में किया उसे उन लोगों ने शिक्षा के माध्यम से भावी पीढ़ी और तात्कालिक समाज में पैदा कर दिया। आज मानव संसाधनों की अधिक आवश्यकता है तभी समाज में फैली

कुरीतियों का उन्मूलन कर सकेंगे। जहाँ शिक्षण प्रक्रिया में निर्जीव चीजें नहीं मानवीय आकांक्षा, आत्मीयता, श्रम और लगन प्रमुख रहती है, वहाँ सार्थक परिणाम आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

### समाज के प्रति शिक्षक का दायित्व

शिक्षा का समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है क्योंकि शिक्षक ही नए नागरिकों का एक तरह से निर्माण करता है जिससे कालांतर में नए समाज का जन्म होता है। वर्तमान समाज एवं भविष्य में बनने वाले सामाजिक घटकों से शिक्षक का प्रभावी संबंध है इसी कारण शिक्षक की अहम भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। परंतु दुर्भाग्य से इस महत्वपूर्ण भूमिका की ओर अब तक उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना अपेक्षित है। शिक्षक की भूमिका के लिए समाज एवं शिक्षक दोनों ही उत्तरदायी हैं। क्या शिक्षक में ही त्याग, तपस्या, असाधारण धैर्य, सहिष्णुता, विश्वास, आस्था, विमुक्त इच्छा एवं निःस्वार्थपरता आदि गुणों का समावेश होना चाहिए? क्या समाज के उसके प्रति कुछ कर्तव्य नहीं हैं? आखिर उसके भी परिवार हैं, स्वयं उसकी तथा उसके परिवारजनों की भी आकांक्षाएँ हैं। वह उन सबका खून करके, स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश और अपने त्याग से जन-साधारण में त्याग और तपस्या का विकास कैसे कर सकता है? क्या ये सब प्रश्न वर्तमान समाज के लिए विचारणीय नहीं हैं? जब सम्पूर्ण समाज ही दूषित हो रहा हो, ऐसे में शिक्षक अपने को

अछूता कैसे रख सकता है जब भौतिक उन्नति की दौड़ में सभी भाग रहे हों तब शिक्षक कब तक त्याग की मूर्ति बना रहेगा? और यदि मान ले कि अगर 'सादा जीवन उच्च विचार' का आदर्श वह स्वयं अपना ले तो क्या उसकी संतानें 'त्वमेव अनुसरन्ति' का कथन चरितार्थ कर सकेंगी? आज के इस फैशन परस्त समाज के नित नए प्रलोभनों के स्पर्श से उस सीमित साधन व आय वाले शिक्षक की संतानें क्या बच सकेंगी? आज सिंचाई, कृषि या पुलिस आदि विभागों में कार्य करने वाला व्यक्ति भी आलीशान कोठी खड़ी कर लेता है, एक शिक्षक क्या अपनी संतान को डॉक्टर या इंजीनियर बनाने का सपना भी नहीं देखेगा? और यदि उसने देखा तो उसे निश्चित रूप से द्वार-द्वार पर 'अर्घ्यदास्यामि' का वचन देकर उस वचन को निभाने के लिए, क्या वह अतिरिक्त अर्थोपार्जन का द्वार नहीं खटखटाएगा। यही कारण है कि आजकल बहुत से अध्यापक अधिक आय के लिए ट्यूशन पढ़ाते हैं। प्राचीन समय का अध्यापक उपर्युक्त दुर्गुणों को त्याग कर समस्त अभावों के बावजूद कठिनतम परिस्थितियों का सामना करते हुए फरिश्ता बना हुआ था, त्रिदेवों में उस का नाम था – गुरुब्रह्मा गुरुवे नमः। जब से उसने अपना यह फरिश्तापन छोड़ दिया है तभी से देश, समाज एवं स्वयं उसकी दुर्दशा का बीजारोपण हो गया तथा वह सम्मान पूर्ण स्थान खो बैठा।

सम्मान भीख की तरह मांगा नहीं जाता वरन् सम्मान के योग्य बनना पड़ता है पहले ईसा की तरह सूली पर निःस्वार्थ भाव से चढ़ना होगा।

यदि सिकंदर जैसे शिष्य चाहिए तो पहले अरस्तू जैसा बनना होगा, टैगोर तथा राधाकृष्णन बनने की ओर कदम बढ़ाना होगा। इसके अतिरिक्त शिक्षक को प्रशिक्षित करने वाली संस्थाओं में भी शिक्षक की तपोमय भूमिका बनाने का यथा साध्य प्रशिक्षण देना होगा ताकि वे भावी यथार्थ जीवन जीने की तैयारी में सक्षम हो सकें।

इसका दूसरा पहलू समाज का शिक्षकों के प्रति दायित्व भी है। समाज, जो सम्मान एक राजनीतिज्ञ, सरकारी अफसर, पटवारी या पुलिसमैन को देता है उसके मुकाबले शिक्षक एवं शिक्षाविद को नहीं देता। समाज का कर्तव्य है कि जिसके हाथ में वह अपनी अमूल्य निधि सौंपता है उसके विषय में भी पूरा विचार करे। शिक्षक को जो कि, नित्य ही अपना जीवन उसी समाज के बच्चों का जीवन बनाने में स्वाह कर रहा है उसे भी तो उसकी सेवाओं का प्रतिफल मिलना चाहिए।

### असंतुष्ट अध्यापक

कहा जाता है कि 'संतुष्ट शिक्षक' ही संतुष्ट छात्र बना सकता है। आज आक्रोश में देश एवं देश के विद्यालय जल रहे हैं। जब भी कोई अनुशासनहीनता का कारण होगा तो शिक्षक को ही दोषी ठहराया जाएगा। अध्यापक असंतोष का यह भी एक कारण है कि आज का व्यक्ति अपने हिमालय के समान दोष तो देखता नहीं और शिक्षकों की आलोचना करता रहता है। इस सारे वैचारिक मंथन से निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षक एवं समाज दोनों को ही उत्तरदायित्वों

के रथ के दोनों चक्रों की भाँति ईमानदारी से निर्वहन करना चाहिए। शिक्षक समाजोन्मुख होना चाहिए और समाज शिक्षोन्मुखी, तब ही शिक्षक समाज में पुनः प्रतिष्ठा पायेंगे, यह दोनों तरफ से ही परमावश्यक है।

### परिवर्तनशील समाज और अध्यापक

समाज में जब बदलाव आता है शिक्षक के साथ शिक्षक की भूमिका में भी परिवर्तन आता है बच्चों की शिक्षा दीक्षा में गुरु की महत्ता तो निर्विवाद रूप से रही है। प्रत्येक काल में यह मौजूद थी इस महत्ता से यदि कहीं फर्क पड़ा है तो वह इस भूमिका के निर्वाह को लेकर ही पड़ा है कि कितनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से शिक्षकों ने इसे निभाया है। समय की गति कितनी भी तीव्र क्यों न हो जाए शिक्षा में उसकी भूमिका को नकार पाना असम्भव होगा। शिक्षक शिष्य के लिए एक मित्र है, दार्शनिक है और साथ में पथ-प्रदर्शक भी है। यह बात स्पष्ट है कि जो भूमिका पहले आदेशात्मक हुआ करती थी, अब मित्रवत होती चली जाएगी। वह गुरु से 'शिक्षक' बना, शिक्षक से 'टीचर' और टीचर से 'फेसिलिटेटर' की भूमिका अदा करता (शिविरा) प्रतीत होता है कि शिक्षा और जीवन से जुड़ी आज भी अनन्त समस्याएँ हैं जो हमारे प्रयास के बावजूद, लगता है आने वाले कल तक विद्यमान रहेंगी तथा आने वाली पीढ़ी अपनी समस्त समस्याएँ अलग लाएगी। इस स्थिति में शिक्षक के लिए यह सोचना अनिवार्य हो जाता है कि उसे निरक्षरता उन्मूलन, नामांकन या वैज्ञानिक

सूझ-बूझ पैदा करने के लिए अपनी कैसी और कितनी तैयारी करनी होगी। वस्तुतः समाज में अध्यापक एकमात्र ऐसा व्यक्ति है जो अपना कार्य नियन्त्रित क्रियान्वयक और मूल्यांकनकर्ता भी है।

वर्तमान समाज में ऐसी नई बात देखने को मिलती हैं जो कि विद्यालय एवं शिक्षकों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगाने का प्रयास कर रही है। ये हैं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश एवं विद्यालयरहित समाज की स्थापना। तकनीकी के परिणामस्वरूप मशीनें अधिकाधिक मात्रा में शिक्षकों का कार्य स्वयं करने लगी हैं। इनसे शिक्षण की समस्याएँ इतनी तीव्र हो रही हैं कि विचारकों ने मत भी व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया है कि हम संभवतः ऐसे युग की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसमें, शिक्षण कार्य पूर्णरूपेण मशीनें करेंगी और मानव शरीरधारी अध्यापक का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। यदि यह पूर्णतः सम्भव न हुआ तो संकुचित तो अवश्य ही हो जाएगा।

दूसरी ओर बदलती हुई परिस्थितियाँ एवं शिक्षा की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के संदर्भ में कुछ शिक्षाविदों ने विचार किए हैं कि विद्यालय अपनी उपयोगिता खो चुके हैं। इवान इलिच एवं एवर्ट रैमर ने अपनी पुस्तकों में विद्यालयों को समाप्त करके इनके विकल्प खोजने के सुझाव दिए हैं। यदि इस तथ्य को व्यावहारिक समझकर समाज को विद्यालयरहित बना दिया जाता है तो स्पष्ट है कि शिक्षकों का वर्तमान स्वरूप भी स्वतः ही समाप्त हो जाएगा और साथ ही उन्हें

समाज में पुनर्स्थापित करने की समस्या भी समाप्त हो जाएगी। इसके विषय में निश्चित रूप से कहना असम्भव होगा। जैसा कि यूनेस्को द्वारा नियुक्त 'विश्व शिक्षा आयोग' के प्रतिवेदन में विचार व्यक्त किया गया है कि 'स्कूल रहित समाज की स्थापना की संकल्पना अभी तक मात्र वैदिक अनुमान के स्तर पर है और इसकी पुष्टि के लिए कोई प्रयोगात्मक आधार उपलब्ध नहीं है।

अतः निकट भविष्य में तो ऐसा कुछ हो पाने की संभावना प्रतीत नहीं होती। तब तक यदि संयोग से वह दिन आया भी तो भारत अथवा अन्य किसी देश का कल्याण शिक्षक को उचित सामाजिक एवं आर्थिक स्तर प्रदान किए बिना संभव प्रतीत नहीं होता है और जैसा कि पूर्वलिखित है कि यह कार्य राज्य समाज, शिक्षकों द्वारा निर्मित संघ एवं व्यक्तिगत रूप से शिक्षक सभी के सामूहिक प्रयासों से ही संभव हो सकेगा।



# कक्षा में पुतलियाँ और बच्चे

राजेश कुमार निमेश\*

इस लेख का उद्देश्य अध्यापकों और बच्चों को कक्षा-कक्ष में ऐसे वातावरण से अवगत कराना है जिसके अन्तर्गत पुतली निर्माण की वह सभी सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जिनके द्वारा पुतली निर्माण किया जा सके, ताकि इसके निर्माण एवम संचालन की प्रक्रिया में कोई अड़चन न आए। साथ ही उन्हें बताना है कि कक्षा-कक्ष में अगर बच्चों के साथ मिल बैठकर पुतली निर्माण करते हैं तो बच्चे स्वतः ही उत्साहित होकर पुतली निर्माण में शामिल हो जाएँगे। पुतलीकला संप्रेषण का सरल एवम् शसक्त माध्यम है क्योंकि इनके माध्यम से हम बात आसानी से कह सकते हैं, जो शायद दूसरे माध्यम से कहना इतना आसान न हो। इस लेख के माध्यम से पुतलियों के रूप में अध्यापक के समक्ष शिक्षण के नए उपादान सुझाए गए हैं।

प्रारम्भिक कक्षाओं में पुतली कला का प्रयोग करने व उनके द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त करने में जो आनन्द का अनुभव होता है वह ओर कहीं नहीं। बच्चों को सिखाने के लिए अध्यापक को बच्चों के स्तर तक आकर बहुत सी तरकीबें प्रयोग करनी चाहिए। ताकि बच्चा आसानी से समझ सके। यह अध्यापक के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है। क्योंकि अध्यापक समझते हैं कि पुतली सिर्फ माहिर लोगों के लिए ही है और पुतली बनाना सिर्फ कला अध्यापक ही सिखा सकते हैं। यकीनन यह एक भ्रम है, क्योंकि प्राथमिक विद्यालयों में कोई भी अध्यापक अगर वह पुतली कला में रुचि लेना चाहता है तो आसानी से पुतली कलाकार या प्रशिक्षित अध्यापक की मदद लेकर पुतली निर्माण एवम संचालन सीख सकता है और अच्छे नतीजे प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रारम्भिक चरणों में कक्षा-कक्ष में पुतली द्वारा शिक्षण करते समय अध्यापक को चिंता करने की जरूरत नहीं है, चाहे वह इस कला में निपुण हो या नहीं। बच्चे उसके प्रयास को पसंद करेंगे। एक बार बच्चे की रुचि उत्पन्न हो जाए तो वह बहुत उत्साही और जिज्ञासु होकर अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कठपुतली बनाने का प्रयास अवश्य करेगा।

\*वरिष्ठ प्रवक्ता (दिग्दर्शन कला), केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

अगर अध्यापक चाहता है कि बच्चों को पुतली कला से परिचित करवाना चाहिए, लेकिन उसे संदेह है कि कहानी सुनाने के साथ-साथ पुतली संचालन विद्यार्थियों का ध्यान खींच पाएगा या नहीं तो इस संदेह को मन से निकाल देना चाहिए। क्योंकि बच्चों को इस तरह के खेल बहुत अच्छे लगते हैं परंतु यह तब और भी प्रभावशाली होगा जब बच्चे के हाथ में पुतली देकर उस बच्चे की उम्र के हिसाब से उसे कहानी सुनाई जाए या बच्चा खुद कहानी का एक सदस्य बनकर अपनी बारी आने पर बोल सकता है।

पुतली कला बच्चों को ऐसे सुअवसर प्रदान करती है जो निम्न शैक्षिक लक्ष्य प्राप्त करने के में सहायक होते हैं—

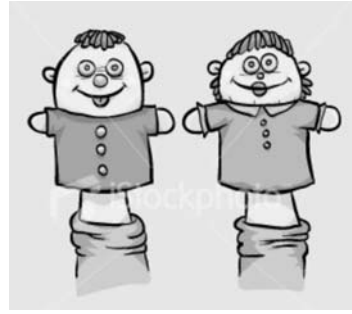
- सृजनात्मक कथन उत्पन्न करने में
- बच्चे की अनुभव शक्ति (निजी योग्यता) को बढ़ाने में
- आत्मविश्वास और निजी संतोष पाने में
- डर, और निराशा को निकालने में
- सामाजिक पारस्परिक युक्ति विकसित करने में
- मुश्किल को हल करने की युक्ति खोजने में
- सुनने के कौशल को तेज करने में।

### पुतलियों के प्रकार

संचालन एवम् निर्माण के आधार पर विभिन्न प्रकार की पुतलियाँ होती हैं। इसका वर्गीकरण नीचे दिया जा रहा है।

### दस्ताना पुतली (Hand Puppet)

इस पुतली को हाथ में पहनकर चलाते हैं। इसलिए यह हस्तपुतली अथवा दस्ताना पुतली के नाम से जानी जाती है। चालक का हाथ पुतली के एकदम अन्दर होता है। और उसे एक प्रत्यक्ष निर्देशन देते हुए चालक संचालित करता है।



### उँगुलियों द्वारा चालित पुतलियाँ (Finger puppet)

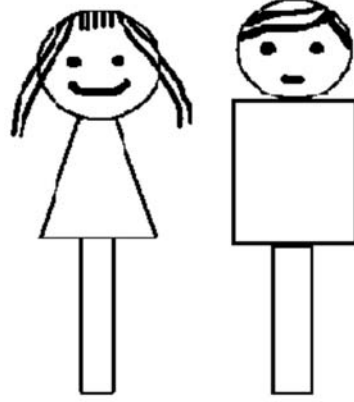
उँगुलियों द्वारा चालित पुतलियों का सबसे आसान स्वरूप है। एक उँगुली द्वारा चालित पुतली, यह स्वरूप बच्चों को कहानियाँ सुनाने आदि के लिए भी उपयोग में लाया जाता है। कहानी के पात्र बहुत जल्दी बनाए जा सकते हैं और उन्हें उँगुलियों पर नचाकर कहानी सुनाते हुए दिखाया जा सकता है।





### शलाका पुतली (Rod puppet)

यह पुतली छड़ों द्वारा चलाई जाती है। इसका सिर एक डंडे से जुड़ा होता है। जिसकी सहायता से इसे नचाया/नियंत्रित किया जाता है और एक से ज्यादा डंडों की सहायता से भी इन पुतलियों को चलाया जाता है। इसके लिए कभी-कभी दो चालकों की भी जरूरत होती है।



### छड़ पुतली (Stick Puppet)

यह बहुत छोटे परिहास अभिनय या फिर नाटकों के लिए उपयोग की जाती है। बच्चों को अपना अभिनय खुद करने की बजाए उन्हें इस आसान लेकिन मनोरंजक पुतलियों के द्वारा अपना अभिनय करने का मौका देना चाहिए। ये पुतलियाँ बहुत आसानी से बनाई जाती हैं। इन्हें किसी गत्ते या कपड़े पर बनाए गए खिलौने को 6" की Stick के साथ जोड़ दिया जाता है और स्टिक पकड़कर इसे चलाया जाता है।

### सूत्र संचालित पुतली (String Puppet)

यह पुतली धागों की सहायता से संचालित की जाती है। इसके प्रत्येक अंग को धागों से जोड़ दिया जाता है। ये धागे चालक की उंगुलियों या हाथों में होते हैं जिसके सहारे पुतलियों को संचालित करता है।





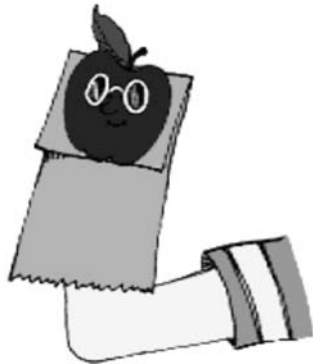
### छाया पुतली (String Puppet)

छाया पुतली को छड़ियों या धागों की सहायता से जोड़ा जाता है। ये छड़ियाँ या धागे चालक द्वारा चालित होते हैं, जिन्हें पर्दे के पास रखा जाता है। जिस पर पीछे से प्रकाशपुंज फैका जाता है ताकि छाया या प्रतिबिंब दर्शकों को परदे पर दिखाई दें।



### कागज के थैले की पुतलियाँ (Paper Bag Puppet)

कागज के थैले से पुतलियाँ बनाने का यह एक आसान तरीका है। इन्हें आप हाथों में दस्तानों



की तरह सिर पर मुखौटे की तरह और छड़ डालकर भी चलाया जा सकता है। इन थैलों से शेर, खरगोश, बिल्ली, कुत्ता और आदमी आदि की पुतलियाँ बना सकते हैं। अलग-अलग जानवरों एवम् इंसानों की पुतली बनाते समय इनमें चटकीले रंगों का भी प्रयोग कर सकते हैं। जोकि बच्चों को आकर्षित करते हैं।

**अन्य प्रकार की पुतलियाँ :** उपरोक्त पुतलियों के अलावा अन्य कई प्रकार की पुतलियाँ भी होती हैं जिन्हें अलग-अलग सामग्री से बनाया जाता है।

### मंच

हर एक किस्म की पुतली के लिए एक अलग तरह का मंच चाहिए और पुतली बनाने से पहले मंच के बारे में जानना बहुत जरूरी है क्योंकि



पुतली और मंच के आकार का आपस में गहरा संबंध होता है। इसलिए संचालक पुतलियों के प्रभाव को बढ़ाने के लिए मंच का उपयोग करता है। इन मंचों का निर्माण पुतलियों के आकार और प्रकार पर निर्भर करता है, और कुछ हद तक मंचों की परिस्थितियाँ पुतली संचालक के कार्य को सीमित करती हैं। परंतु

यह निर्णय कठपुतली बनाने वाले और इसे नचाने वाले लेते हैं कि उन्हें इसका खेल प्रस्तुत करने के लिए कैसी परिस्थितियाँ व माहौल चाहिए।

### पुतली बनाने हेतु सामग्री की उपलब्धता

अगर अध्यापक बच्चों के साथ मिलकर कक्षा-कक्ष में पुतली बनाना शुरू कर देता है तो अध्यापक के साथ-साथ बच्चों का उत्साह भी बढ़ता है और बच्चे भी देखकर इसमें रुचि लेने लगते हैं। इस रुचि को बरकरार रखने के लिए कक्षा में पुतली बनाने के लिए हर सामान आसानी से मिल जाना चाहिए ताकि अध्यापक और बच्चों को सामग्री हेतु ज्यादा कठिनाई न उठानी पड़े। हर नई कक्षा में पुतली बनाना सिखाना शुरू करने से पहले उस कक्षा के नए वातावरण में अच्छी तरह से घुलमिल जाना चाहिए ताकि कक्षा-कक्ष में अध्यापक बच्चों को आसान तकनीक से पुतलियाँ बनाकर दिखा सके और बच्चे भी उसका अनुसरण कर सकें। बच्चों के लगातार प्रयास के बाद ऐसा वक्त भी आता है जब बच्चे अध्यापक कि मदद लिए बिना काम कर सकते हैं और वही समय है पुतली को प्रस्तुत करने का। हमें यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि अध्यापक हर एक की मदद एक-एक करके नहीं कर सकता इस तथ्य को ध्यान में रखकर बच्चों को एक गोल मेज के आस-पास बिठा सकते हैं जिस पर कठपुतली बनाने का सारा सामान रखा हो। साथ में अध्यापक खुद भी उस मेज के पास बैठ जाए और

कठपुतली बनाना शुरू करे। बच्चे कुछ समय के लिए देखेंगे और फिर थोड़े उत्साह के साथ खुद बनाना शुरू करेंगे कभी अध्यापक की नकल करके और कभी बिल्कुल अलग। पहले पुतलियाँ ज्यादा अच्छी नहीं होंगी पर बच्चे प्रोत्साहित होंगे और अपने काम में रुचि लेने लगेंगे। रुचि को बरकरार रखने के लिए हमेशा सरल एवम् जल्दी बनाने का तरीका अपनाया जाए ताकि निराशा उत्पन्न न हो। बच्चे के एक ही प्रयास में सफलता उसे महत्वाकांक्षी बना देती है कि वह और भी अच्छा बनाए। बच्चों द्वारा बनाई हुई पुतली से बिना हस्तक्षेप उन्हें खुलकर खेलने का ज्यादा से ज्यादा मौका देना चाहिए।

### कठपुतलियाँ और हस्तकला

जब तक की सही हावभाव और आवाज नहीं मिलाई जाती, पुतली सिर्फ एक कपड़े का टुकड़ा मात्र है। आप किस तरह से पुतली पकड़ते और नियंत्रित करते हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण है। प्रायः यह पाया गया है कि कुछ व्यक्ति चाहे बच्चे हों या वयस्क, पुतली को सही तरीके से अपने हाथों में लेते हैं और उन्हें आसानी से नियंत्रित कर लेते हैं और उनकी आँखें, दिमाग और पूरा ध्यान पुतली पर देखा जा सकता है। परंतु कुछ लोग पुतलियों को ऐसे पकड़ते या नियंत्रित करते हैं जैसे वह कोई भारी चीज हो, उनका सारा ध्यान पुतली को संभालने में लग जाता है इसलिए जो व्यक्ति सही तरीके से नियंत्रण करने में असमर्थ हैं उन्हें उसी समय पुतलियों के संचालन से जुड़े सभी पहलुओं को सिखाना चाहिए।

एक संचालक के संवाद बोलने का तरीका उसके चरित्र का एक हिस्सा होता है जो कि उसके मनोरंजन और क्रियाशीलता पर प्रभावी होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संचालन के साथ-साथ संवाद कला भी नाटक को प्रभावी बनाती है जिसमें व्यक्ति पूरा तल्लीन हो जाता है। उसकी शुरुआत बच्चे के अपने नाटक से होती है जब वह खुद नाटक प्रस्तुति में अलग व्यक्ति बन जाता है और उसका यह नाटक युवा अभिनय पर खत्म होता है।

अंततः बच्चों द्वारा पुतली संचालन करते समय कुछ सावधानी चरित्रों के संबंधों में दी जा सकती है कि संचालन से पहले चरित्र के बारे में अच्छी जानकारी हासिल करें कि वह कैसे चलेगा, कैसे उठेगा, कैसे बात करेगा। ताकि आपके संचालन में अभ्यास झलके। जहाँ तक छोटे बच्चों के समूहों की बात है तो वे हमेशा ऐसे विषयों को ही लेते हैं जिनमें उन्हें ज्यादा मज़ा आता है।

### कठपुतली और बच्चे

हम बहुत-सी अलग-अलग तरह की पुतलियों से अक्सर खेलते हैं कुछ पुतलियाँ स्वयं बनाई होती हैं, कुछ खरीदी हुई होती हैं, और कुछ वह जो हम अपने बचपन से कभी नहीं भूले। क्योंकि वह निर्जीव चरित्रों को बनाते हुए जिन्दगी में आई। बच्चों को पुतली संचालन सिखाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि बच्चें अपने आप में ही अच्छे पुतली चालक होते हैं। पहली बार बच्चे खिलौनों से खेलते हैं तब उन्हें नचाते हैं या हिलाते हैं और बात करते हैं।

खिलौने और गुड़िया बच्चों के खेल में एक महत्वपूर्ण साधन का रूप लेते हैं। वह हँसते, बतियाते हैं और बहस करते हैं। वह उन्हें चरित्र पर आधारित करके बार-बार चलाते हैं। अर्थात् वह बच्चा जो अपनी गुड़िया को चला सके वह पुतली चालक है। वह बच्ची जो अपनी गुड़िया को डाँटती है पर प्यार से एक माँ की तरह, वह एक अभिनेत्री है।

सही मायने में पुतली वही होती है जिसे पुतली चालक बनाता है। वह चालक की दोस्त भी हो सकती है क्योंकि वह चालक के साथ हँस सकती है, खेल सकती है। वह एक मस्खरा भी हो सकती है। वह शरारती भी हो सकती है। जो बच्चा सोचता, महसूस करता है, वह उसके दुख बाँट सकती है। वह उस बच्चे को बता सकती है, जो बच्चा सिर्फ खोना जानता हो, सिर्फ भूख से लड़ना जानता हो, गरीबी से लड़ना जानता हो कि यहाँ पर खुशी और प्यार भी है। पुतली बच्चे को बता सकती है कि उसके बहन-भाई उसके साथ खेल सकते हैं तो नाराज भी हो सकते हैं। एक पुतली बच्चे को यह भी बता सकती है कि उसके माता-पिता दुखी हो सकते हैं, और वह दिखा सकती है कि प्यार की कीमत क्या है, लड़ाई की निरर्थकता क्या है और साथ काम करने और सहारा देने के क्या फायदे हैं।

### पुतली सीखने का एक साधन

पुतली सीखने के साधन के रूप में उपयोग में लाई जा सकती है। अध्यापक बच्चों को पुतली की सहायता से प्रेरित कर सकते हैं कि बच्चे अध्यापकों या सहपाठियों से सीधे बात न करते

हुए पुतली के माध्यम से बात कर सकते हैं जो ज्यादा उचित है। इसके लिए बच्चे दैनिक क्रियाकलापों से समय निकालकर इसमें भाग ले सकते हैं।

पुतली एक मनोरंजक वस्तु के अलावा भी बहुत कुछ है। पुतलियाँ बहुत अच्छी विनोदी और कथाकार भी होती हैं, जो कि विषयवस्तु को रोचक ढंग से प्रस्तुत कर सकती हैं। खेल-खेल में वह बहुत कुछ पढ़ा सकती है। पुतली नाट्यशाला एक पाठशाला भी है जहाँ बच्चे अच्छे चरित्र, हावभाव और अच्छे संप्रेषण के बारे में और अपने आपको और अपने आस-पास के लोगों को कैसे समझें यह भी सीख सकते हैं।

यह सिखाने का एक लचीला साधन है क्योंकि यह अध्यापक और विद्यार्थी दोनों पर केंद्रित होती है। कोई भी पक्ष आसानी से शुरुआत कर सकता है। इनके द्वारा नीति-कथा, परियों की कहानियाँ, सांस्कृतिक कहानियाँ, गौरव गाथाएँ आसानी से प्रदर्शित की जा सकती हैं और मुश्किलों में घिरे हुए बच्चों के लिए उपयोग में लाई जा सकती हैं ताकि वह समाजिक मुश्किलों का पता लगाकर सही हल की खोज कर सकें। पुतलियों के छोटे-छोटे प्रदर्शन बहुत अच्छे मौके दे सकते हैं जिससे कक्षा में हर मुश्किल का हल निकालने के लिए व दैनिक जीवन में आने वाली कठिनाई के हल के लिए नए तरीके ढूँढ़ सकें। पुतली की सहायता से हम विद्यार्थियों के साथ आत्मसम्मान, ईमानदारी, शिष्टाचार और आरोप-प्रत्यारोप जैसे विषयों पर बात कर सकते हैं।

## कक्षा में बच्चों के साथ पुतली नियंत्रण का अनुभव

कक्षा में पुतली चलाने का असली मजा तभी आता है जब विद्यार्थियों ने पुतलियाँ खुद बनाई हों। जब बच्चे पुतलियाँ खुद बनाते हैं तब एक संबंध स्थापित हो जाता है जिससे वे प्रेरित होते हैं और जब खुद बनाई पुतली को बात करते और चलते देखते हैं तो उन्हें बहुत आनन्द आता है। बहुदा यह देखा गया है कि विद्यार्थियों द्वारा खुद बनाई गई पुतलियाँ संचालित करते समय वही हावभाव प्रदर्शित होते हैं जैसे बच्चे के होते हैं।

अध्यापक जो पुतलियाँ नियंत्रित करते हैं उन्हें सर्वप्रथम यह सोचने की जरूरत है कि मैं अपनी कठपुतली से क्या काम करवाना चाहता हूँ। क्या कोई नया विषय पढ़ाना होगा, क्या वह कविता होगी, गाना होगा या कोई कहानी होगी? पहले यह निर्णय करना अति आवश्यक है। विषय वस्तु पढ़ाते समय आपको किताबी भाषा या ऐसी भाषा बोलने की जरूरत नहीं है जो आप आसानी से न बोल सकें। आप व्यवहारिक भाषा का उपयोग करते हुए विषयवस्तु पढ़ा सकते हैं। इसके लिए शुरु-शुरु में संचालन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

पुतली निर्माण एवम् संचालन से निरंतर जुड़े रहें और दैनिक क्रियाकलापों में भाग लेते रहें ताकि आप पुतली निर्माण एवम् संचालन में निपुण हो जाएँ। कक्षा-कक्ष में उपयोग करने के लिए पुतलियों के बहुत से रूप ले सकते हैं जैसे पशु-पक्षी, जानवर, स्त्री-पुरुष या काल्पनिक पात्र। परंतु यह ध्यान अवश्य रखें कि पुतलियाँ

प्यारी व कोमल होने के साथ-साथ ऐसी होनी चाहिए कि सारी कक्षा उससे आसानी से खेल सके।

पाठ्यपुस्तकों में निहित विषयवस्तु को ज्यों का त्यों बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करना शायद कठिन कार्य न हो। परंतु पुतली नाटक में विषयवस्तु को कुछ अलग ढंग से लिखने व प्रस्तुत करने में थोड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है। जिसके लिए अध्यापक को मन लगाकर प्रयास करने की आवश्यकता होगी। धीरे-धीरे जब वह निपुण होने लगता है तो उसे पुतली द्वारा विषयवस्तु को पढ़ाने में आनन्द आता है।

### निष्कर्ष

कक्षा में पुतली का प्रयोग प्रेरणा देने के साथ-साथ साहित्य, समाज एवम् संस्कृति और आपसी संबंधों को समझाने के लिए अच्छे ढंग से किया जा सकता है। अध्यापक सीखें कि कैसे पुतलियाँ बनाए, कैसे प्रयोग करें

और कैसे उनका प्रभावशाली तरीके से पाठ्यक्रम में समावेश किया जाए। पुतली कला संप्रेषण का स्पष्ट और सौंदर्यात्मक साधन है और इसका उपयोग करके न केवल कक्षा को रोचक और प्रभावशाली बनाते हैं बल्कि यह हमें ऐसे अवसर उपलब्ध कराता है कि हम हर विद्यार्थी को अहमियत देते हुए सिखाएं। स्पष्ट रूप से पुतली कला दृश्य और सौंदर्य की अभिव्यक्ति के अलावा इसका प्रयोग न केवल कक्षा के शिक्षण को रुचिकर बनाता है बल्कि यह विद्यार्थी के समूह के प्रत्येक बच्चे को अहम रोल अदा करने के लिए अवसर देता है। पुतली कला के माध्यम से अध्यापक बच्चों को जानने का प्रयास करता है और कक्षा में सौंदर्यपूर्ण एवं सहयोगात्मकपूर्ण वातावरण बनाने में मदद करता है। कठपुतली कला प्रत्येक बच्चे में खुशी का माहौल पैदा करती है और अपनी भाषा के माध्यम से बच्चों के दिलो-दिमाग पर छा जाती है।

### संदर्भ

1. बरसफोर्ड, 1996. हाउ टू मेक पपेट एण्ड टीच पपेटरी, मिल्स एण्ड बून लिमिटेड
2. डेविड कुर्रेल, 1974. द कम्प्लीट बुक ऑफ पपेटरी, पिटमेन पब्लिशिंग
3. गिल गोर्डन, 1986. पपेट फॉर बेटर हेल्थ, द मेकमिलन प्रेस लिमिटेड
4. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1976, राष्ट्रीय-एकता में कठपुतली नाटकों का योगदान
5. निमेश राजेश, शिक्षा में पुतलीकला प्रतिवेदन-2000, (अप्रकाशित) केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

# मानवाधिकारों की शिक्षा एवं विभिन्न योग्यता के विद्यार्थी

सुजाता साहा\*

मानवाधिकारों के प्रति चिंता आज मानव से संबंधित मुख्य मुद्दे के रूप में उभरी है। इसकी पृष्ठभूमि में अनेक कारण रहे हैं, जैसे-अंतर्राष्ट्रीय संगठन की गतिविधियाँ, मानवाधिकारों पर मीडिया का अत्यधिक ध्यान, वर्तमान विश्व में मानवाधिकार हनन की बढ़ती घटनाएँ और परिणामस्वरूप समस्त संसार में इन अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता। सभी मनुष्यों को मानवाधिकारों के संदर्भ में शिक्षित होना चाहिए। प्रजातांत्रिक और बहुसांस्कृतिक समाज में युवा पीढ़ी को बेहतर ढंग से तैयार करने हेतु भी इसके महत्व को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। बाल अधिकारों से संबंधित विभिन्न कन्वेंशनों में भिन्न योग्यता के लोगों के शैक्षिक अधिकारों को सामान्य मनुष्य के अधिकारों के ही समान मान्यता दी गयी है। मानवाधिकार उपागम बच्चों को उनकी विकलांगता के आधार पर नामांकित नहीं करता। भिन्न योग्यता के बच्चों के अधिकार के रूप में शिक्षा को देखने पर ही समाज इन बच्चों की विशिष्ट योग्यताओं को समझ पायेगा। इस संदर्भ में इस प्रपत्र का मुख्य केंद्रबिन्दु भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के अधिकारों के संरक्षण हेतु मानवाधिकार की शिक्षा से संबंधित उद्देश्यों, सिद्धांतों और रणनीतियों का विवेचन करना है।

## मानवाधिकार की अवधारणा

मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो किसी व्यक्ति को मनुष्य होने के कारण प्राप्त होते हैं। ये अधिकार हर व्यक्ति के होते हैं तथा बिना किसी भेदभाव के सभी मनुष्य इनका आनंद लेते हैं। ये उन सभी अधिकारों के आधारस्वरूप होते हैं, जो मनुष्यों को सम्मानपूर्ण जीवन जीने तथा उनके सर्वोत्तम संभव विकास हेतु आवश्यक होते हैं।

विश्व स्तर पर मानवाधिकारों की स्थापना के मूल में जो सिद्धांत क्रियाशील हैं उनमें से प्रमुख हैं-सभी व्यक्तियों की गरिमा को मान्यता, सांस्कृतिक भिन्नता को आधारभूत मानव-मूल्य मानना तथा सभी की मूलभूत समानता को सुनिश्चित करना। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की प्रस्तावना में यह स्पष्टतः कहा गया है-  
“मानव परिवार के सभी सदस्यों की सहज गरिमा तथा उनके समान एवं अपृथक्कनीय

\*सीनियर लेक्चरर, वसंत कॉलेज फॉर वीमेन, के.एफ.आई., राहघाट फोर्ट, वाराणसी 01, (उ.प्र.)

अधिकारों की मान्यता ही विश्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शांति का आधार है।”

### मानवाधिकारों की शिक्षा एवं भिन्न योग्यता के व्यक्ति

यूनस्को की मानवाधिकारों एवं प्रजातंत्र संबंधी ‘अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस’ ने मार्च 1993 में कहा-

“मानवाधिकारों की शिक्षा स्वयं में एक मानवाधिकार है, जो सम्यक विकास, सभ्य समाज और लोकतंत्र की एक पूर्वावश्यकता है।”

मानवाधिकारों की शिक्षा के अंतर्गत नए ज्ञान एवं कौशल को प्रदान कर तथा अभिवृत्तियों को सकारात्मक रूप में ढालकर मानवाधिकारों की एक सार्वभौमिक संस्कृति निर्मित करना शामिल है। इससे मानवाधिकार-हनन की घटनाओं में कमी तो होगी ही न्याय एवं शांति से परिपूर्ण स्वाधीन समाज के निर्माण को भी बल मिलेगा।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा (1995-2004) के दशक को ‘संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार शिक्षा दशक’ घोषित किया गया था। तत्कालीन संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने ठीक ही कहा था-

“शिक्षा के बिना हम एवं अपने संकीर्ण परिवेश से बाहर आकर वैश्विक अंतर्निभरता की वास्तविकता का साक्षात्कार नहीं कर सकते। शिक्षा के अभाव में हम मानवीय लक्ष्यों और आकांक्षाओं की पहचान भी नहीं कर सकते।”

विकलांग व्यक्ति दूसरों की ही तरह मनुष्य होते हैं। वस्तुतः उनकी योग्यताएँ भिन्न प्रकृति की

होती हैं। उनकी कुछ योग्यताएँ ऐसी हो सकती हैं, जो हम सबके पास भी नहीं होतीं। इसके बावजूद वे समाज के ऐसे अंग के रूप में देखे जाते हैं, जिनके अधिकार अत्यंत सीमित हैं।

“प्रत्येक मनुष्य समाज का ही एक अंग होता है और समाज तब तक विकास के अधिकतम स्तर को प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि इन भिन्न स्वाभाविक योग्यता-संपन्न इकाइयों का भी पूर्ण विकास नहीं हो जाता। अतः इनकी स्वाभाविक योग्यताओं का अधिकतम संभव विकास करने, उन्हें उपयुक्त अवसर प्रदान करने, उन्हें उनकी भूमिकाओं के प्रभावपूर्ण निर्वहन के योग्य बनाने तथा उन्हें आत्मनिर्भर और सामान्य जीवन की ओर अग्रसर करने के प्रयास आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हैं।”

भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के मानवाधिकारों के संरक्षण की घोषणा अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों में की गयी है। जैसे-

#### \*संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों की घोषणा

“प्रत्येक बालक को शिक्षा का सहज अधिकार होता है ताकि उसके विकास को सुनिश्चित कर उसकी व्यक्तिगत संभावनाओं को पूर्ण किया जा सके।”

#### \*बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अनुच्छेद 23)

“मानसिक अथवा शारीरिक रूप से विकलांग बालक वैसी, दशाओं में एक



पूर्ण और सम्मानजनक जीवन का आनंद ले सकता है, जो उसके महत्व को सुनिश्चित करते हैं, आत्मनिर्भरता को बढ़ाते हैं तथा समुदाय में उसकी सक्रिय सहभागिता को बढ़ाते हैं।”

#### सलामांका स्टेटमेंट 1994

“विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की पहुँच नियमित विद्यालयों तक होनी चाहिए, जहाँ बाल-केंद्रित शिक्षा विज्ञान के साथ उनकी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।”

#### \*विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार-संरक्षण एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम, 1995

“विकलांगता से ग्रस्त 3 से 18 वर्ष के प्रत्येक बालक की निःशुल्क शिक्षा एवं शैक्षिक उपकरणों तक पहुँच होनी चाहिए।”

इन घोषणाओं के बावजूद वर्तमान परिस्थितियों में इन विशिष्ट समूहों के अधिकारों का हनन हो रहा है। अन्य बच्चों की तुलना में बाल्यावस्था के बाद उनके जीवित रहने की संभावना कम ही रहती है (जीवन के अधिकार का हनन)। शैशवावस्था में ही वे प्रायः या तो त्याग दिए जाते हैं या जीवनपर्यंत उपेक्षित रहते हैं अथवा बाद में उनका कोई पारिवारिक जीवन नहीं रहता। भिन्न योग्यता की लड़कियाँ अक्सर अपने परिवार में गंभीर भेदभाव भुगतती हैं। (पारिवारिक जीवन तथा क्रूरता एवं उपेक्षा के विरुद्ध संरक्षण

के अधिकार का हनन)। ऐसे अनेक बच्चों को तब भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जब उनके साथ समाज, संस्था या अभिभावक, शिक्षक, सहपाठी आदि के रूप में हम समायोजन नहीं करते, बल्कि उनसे समायोजन की अपेक्षा करते हैं (भेदभाव न किए जाने के अधिकार का हनन)। नामांकन संबंधी कठोर नीति, विद्यालय भवन तथा कक्षाओं की असुविधाएँ, कठोर पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन संबंधी दोषपूर्ण कसौटी, अपर्याप्त संसाधन इत्यादि समस्याओं के कारण शिक्षा तक उनकी पहुँच अत्यंत सीमित होती है।

यदि हम भारत के भिन्न योग्यता सम्पन्न बच्चों की शैक्षिक दशा पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि स्थिति बहुत सुखद नहीं है। यूनिसेफ के अनुसार, भारत में 0-14 वर्ष की आयु के बीच के लगभग 300 मिलियन बच्चे हैं। गैर-सरकारी सूत्रों के अनुसार, इन बच्चों के लगभग 10% की शैक्षिक आवश्यकताएँ विशिष्ट प्रकृति की हो सकती हैं। इस आधार पर भारत के लगभग 30 मिलियन बच्चे एक या अधिक प्रकार की विकलांगता से ग्रस्त हैं। इनमें से मात्र 3% से 4% को ही सामान्य अथवा विशिष्ट शिक्षा का लाभ मिल पाता है। शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों की एक बड़ी संख्या बिना विशेष सहायता के ही विद्यालय जाती है। अधिगम विकलांगता से ग्रस्त बच्चों की भी यही स्थिति है। सहायता सेवाओं के बिना इनमें से कई बीच में ही विद्यालय छोड़ देते हैं।

भिन्न योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों के मानवाधिकारों को संरक्षित करने हेतु सर्वप्रथम उन्हें और उनके



सामान्य साधियों को उनके अधिकारों, संबंधित नियमों तथा विशिष्ट अवसरों के बारे में शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को उनकी अपूर्व योग्यताओं, उपयुक्त पहचान स्थापित करने संबंधी उनकी संघर्ष-क्षमता तथा उनके जीवन की कठिनाइयों की जानकारी होनी चाहिए। हमारे प्रजातांत्रिक समाज में समानता एवं सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने हेतु भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के मानवाधिकारों के प्रति सजगता उत्पन्न करना अनिवार्य है। शिक्षकों को भी इस संदर्भ में प्रशिक्षित करना चाहिए।

भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के मानवाधिकारों के शिक्षण की क्रमबद्ध विधि के अंतर्गत उपयुक्त अनुदेशनात्मक उद्देश्य, प्रभावपूर्ण अधिगम वातावरण प्रदान करने हेतु कुछ आधारभूत सिद्धांत तथा शिक्षण संबंधी उपयुक्त रणनीतियों का अनुपालन करने की आवश्यकता होती है।

### भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के विशेष संदर्भ में मानवाधिकारों की शिक्षा

धंद (2002) ने मानवाधिकारों की शिक्षा के त्रि-आयामी उद्देश्यों की चर्चा की है। भिन्न योग्यता के विद्यार्थियों की योग्यताओं एवं उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने हेतु उन्हें परिमार्जित रूप में इस प्रकार ग्रहण किया जा सकता है—

#### ज्ञान के विकास से संबंधित उद्देश्य

- (क) मानवाधिकार तथा अन्य संबंधित संकल्पनाओं (संप्रत्ययों) का विकास करना।
- (ख) मानवाधिकार संबंधी दस्तावेजों जैसे— मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा,

तत्संबंधी अंतर्राष्ट्रीय निर्णय, सलामांका स्टेटमेंट तथा विकलांग व्यक्तियों संबंधी अधिनियम इत्यादि की समझ का विकास करना।

- (ग) मानवाधिकार संबंधी संस्थाओं तथा भिन्न योग्यताओं के व्यक्तियों के अधिकारों के संरक्षण तंत्र की समझ एवं तत्संबंधी जागरूकता का विकास करना।

### उपयुक्त मूल्यों एवं अभिवृत्तियों के विकास संबंधी उद्देश्य

- (क) दूसरे व्यक्तियों के अधिकारों के प्रति सराहना एवं आदर-भाव का विकास करना।
- (ख) मानवाधिकारों के सिद्धांत के साथ सहनशीलता एवं अन्य उपयुक्त व्यवहार एवं अभिवृत्तियाँ विकसित करना।
- (ग) उन भिन्न योग्यता संपन्न व्यक्तियों के प्रति समानुभूति (empathy) का भाव प्रदर्शित करना, जिनके अधिकारों का हनन किया जा रहा है।
- (घ) आलोचनात्मक एवं वस्तुनिष्ठ चिंतन द्वारा पूर्वाग्रहों एवं भेदभाव की पहचान करना।
- (ङ) सामाजिक न्याय एवं समानता जैसे प्रजातांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देना।
- (च) दूसरों के अनिवार्य महत्व तथा विकलांग एवं सामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकताओं, अधिकारों, आकांक्षाओं, व्यवहार तथा प्रतिभा के उन सामान्य पक्षों के प्रति सराहना-भाव का विकास करना, जो सभी मनुष्यों को परस्पर संबंधित करते हैं।

### कौशलों के विकास संबंधी उद्देश्य

- (क) अंतर्क्रिया तथा संप्रेषण के माध्यम से भिन्न योग्यता के व्यक्तियों को सम्मान देने संबंधी सामाजिक कौशलों का विकास करना।
- (ख) भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के मानवाधिकारों के संरक्षण तथा क्रियान्वयन के लिए मानवाधिकारों के उपकरणों तथा संस्थागत तंत्र का प्रयोग करना।

### इस संदर्भ में मानवाधिकारों की शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत

भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के संदर्भ में 'सबके लिए शिक्षा' के लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब सामान्य शिक्षा प्रणाली को इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशिष्ट अध्यापकों की सहायता से सशक्त किया जाए। विकलांग विद्यार्थी प्रभावपूर्ण वातावरण में अपनी संभावनाओं की मान्यता चाहते हैं। अतः शिक्षा संबंधी मानवाधिकारों को इन सिद्धांत की नींव पर भी आधारित होना चाहिए।

- किसी न किसी रूप में हर बालक विशिष्ट होता है।
- सकारात्मक मूल्य प्रणाली एवं एक मानक के रूप में ऐसे मानवाधिकारों पर बल देना जिनसे सभी संबंधित हों।
- मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा से स्पष्टतः मुद्दों को परस्पर जोड़ना।
- इस विश्वास पर बल देना कि विकलांग

अथवा सामान्य सभी व्यक्ति श्रेष्ठ निष्पादन कर सकते हैं तथा तत्संबंधी श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करना।

- वैसे क्रियात्मक आयामों को शामिल करना, जो सभी छात्र-सहभागियों को-चाहे वे भिन्न योग्यता के हों अथवा सामान्य-विद्यालय या समाज में उनके विश्वासों एवं समझ के अनुरूप कार्य करने के अवसर प्रदान करें।
- अधिगम की सहगामी विधियों का उपयोग करना।
- मानवीय गरिमा और न्याय के प्रति आदर प्रदर्शित करने वाला अधिगम वातावरण निर्मित करना।

### मानवाधिकार की शिक्षा प्रदान करने हेतु रणनीतियाँ एवं विधियाँ

भिन्न योग्यता के व्यक्तियों के विशेष संदर्भ में मानवाधिकार की शिक्षा हेतु उपयुक्त रणनीतियों की सूची के अंतर्गत रोल प्लेइंग सिमुलेशन, केस स्टडी, विचार-विमर्श, खोज, ब्रेन स्टॉर्मिंग, मूल्य-विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण, स्वतंत्र शोध, साक्षात्कार, सहयोगपूर्ण अधिगम, क्षेत्र भ्रमण एवं अतिथि वक्ताओं की वार्ताओं का आयोजन इत्यादि शामिल हैं। संपूर्ण विषयवस्तु एवं उपयुक्त शिक्षण-रणनीति के चयन हेतु अनेक कारकों पर विचार करना चाहिए। उदाहरण के लिए—

- (क) अधिगमकर्ता की सांस्कृतिक एवं सामुदायिक पृष्ठभूमि, आवश्यकता, विकास एवं उपलब्धि का स्तर, उसकी योग्यता एवं सीमा

- (ख) ज्ञान, मूल्य तथा कौशलों से संबंधित त्रि-आयामी उद्देश्य को अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के अंतर्गत शामिल करना
- (ग) पाठ्यक्रम की विषयवस्तु
- (घ) सहभागियों की संख्या
- (ङ) कक्षा का वातावरण
- (च) समय की उपलब्धता
- (छ) रणनीति की प्रकृति एवं जटिलता
- (ज) शिक्षक की योग्यताएँ एवं
- (झ) सामग्रियों की उपलब्धता

पाठ्यसामग्रियों में विकलांगता को एक हीन अवस्था के रूप में प्रक्षेपित नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों की छवि का सही प्रस्तुतिकरण होना चाहिए, ताकि सभी (सामान्य विद्यार्थी एवं आम जनता) उनकी सकारात्मक छवि निर्मित कर सकें।

विकलांगता से संबंधित सिमुलेशन अभ्यास के सशक्त शैक्षिक मूल्य हो सकते हैं। वे सामान्य लोगों की विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियों की स्थिति समझाने हेतु उपयोगी साबित हो सकते हैं। विकलांगता की दशाओं को सिमुलेट करने हेतु सामान्य कक्षा के सामान्य बच्चों की आँखों पर कुछ समय के लिए पट्टी बाँधी जा सकती है, उनके कानों को प्लग किया जा सकता है, उन्हें बिना अंगूठे की सहायता के लिखने को कहा जा सकता है या बैसाखी के सहारे एक पैर पर चलने को कहा जा सकता है। इससे सामान्य विद्यार्थी परस्पर भिन्न प्रकृति की विकलांगता का अनुभव प्राप्त पाएँगे। साथ ही, वे विकलांग बच्चों की कठिनाइयों और विशिष्ट योग्यताओं को समझ पाएँगे। इससे ऐसे बच्चों के प्रति उनके मन में भी

एक स्वाभाविक चिंता उत्पन्न होगी। इन क्रियाओं की सहायता से सामान्य कक्षा के भिन्न योग्यता के बच्चों का बेहतर समायोजन हो सकता है। शिक्षकगण भी विकलांगता की विभिन्न दशाओं को समझने के लिए इन सिमुलेशन क्रियाओं को उपयोग कर सकते हैं।

### इस संदर्भ में कतिपय सुझाव

- शिक्षकों की सहायता करना तथा उन्हें विशिष्ट प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों, कार्यशालाओं तथा पाठ्यपुस्तकों की सुविधाएँ उपलब्ध कराना। शिक्षकों को पुनर्वास के क्षेत्र की नवीन प्रवृत्तियों एवं मुद्दों से अवगत कराने हेतु उपयुक्त पाठ्यक्रमों का संचालन करना चाहिए।
- अनुभवों के आदान-प्रदान हेतु संबंधित संस्थाओं एवं विशेषज्ञों से संपर्क-स्थापन में सहभागिता करना।
- सामान्य जनता को सूचित, वितरित करने हेतु रेडियो एवं दूरदर्शन पर विशिष्ट आवश्यकता के व्यक्तियों के मानवाधिकारों पर कार्यक्रम प्रसारित करना।
- संबंधित गीत, वृत्तचित्र, नाटक, चलचित्र तथा कठपुतली-नाटिका तैयार करना।
- ग्रास रूट तक पहुँचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकने वाले स्थानीय प्रशिक्षकों को तैयार करना।
- भिन्न योग्यता के विद्यार्थियों की कठनाइयों का ध्यान रखते हुए समावेशित कक्षा के किसी भी पाठ के लिए शिक्षण-सहायक सामग्री तैयार करना।

- विद्यालय की इमारत का निर्माण करते समय विकलांगों की कठिनाइयों का ध्यान रखना।
- इस दिशा में मानवाधिकारों की शिक्षा प्रदान करते समय एक क्षेत्रीय नेटवर्किंग रिसोर्स सेंटर का निर्माण करना।
- आवश्यकता पड़ने पर भिन्न योग्यता के बच्चों के माता-पिता तथा समवयस्कों को निर्देशन एवं परामर्श सेवाएँ प्रदान करना।

### निष्कर्ष

निष्कर्षतः मैं यह अनुभव करती हूँ कि मानव मात्र के अधिकारों और उन अधिकारों के हनन

पर काफी चर्चा की जा चुकी है, किंतु आवश्यकता इस चर्चा के बाद उभरकर आए उपायों के क्रियान्वयन की है। विकलांगता से ग्रस्त बच्चों के साथ उनकी शारीरिक-मानसिक भिन्नता के कारण भेदभाव नहीं करना चाहिए। वे हमारे समाज के अभिन्न अंग हैं। उन्हें हमारी शिक्षा की मुख्य धारा में सम्मिलित करना चाहिए। समानता स्थापित करने के प्रयास अनुकूल अभिवृत्ति के साथ ही शुरू हो सकते हैं। ऐसी अभिवृत्तियों के विकास में शिक्षकों की निर्णायक भूमिका हो सकती है और हमें इस भूमिका का सफल निर्वाह करना है।

### संदर्भ

1. कुंडू, सी.एल. 2000. *स्टेटस ऑफ डिसेबिलिटी इन इंडिया*. नई दिल्ली, रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इंडिया
2. धंद, एच. 2000. *टीचिंग ह्यूमन राइट्स : ए हैण्डबुक फॉर टीचर एड्युकेटर्स भोपाल: आथर्स प्रेस*
3. फ्लॉवर्स, एन.(सं.) 1998. *ह्यूमन राइट्स हियर एंड नाउ. मिनिपोलिस : एन.एन. ह्यूमन राइट्स: एड्युकेटर्स नेटवर्क*

# एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक गतिविधियों तथा मूल्यांकन प्रणाली की उपादेयता का अध्ययन

रीना सिंह\*  
पी.के. साहू\*\*

---

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की संस्तुतियों को लागू करते हुए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों के व्यवसायिक विकास व सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा एकेडेमिक स्टाफ कॉलेजों की स्थापना की गयी। इन संस्थाओं के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों की इनसे क्या अपेक्षाएँ हैं, अपने उद्देश्यों को ये संस्थाएँ कहाँ तक पूरा करने में सक्षम होती हैं तथा इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली में किस प्रकार सुधार किया जा सकता है? इन्हीं मुद्दों पर चर्चा की गयी है इस शोध लेख के माध्यम से।

---

उच्च शिक्षा को संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में विशेष महत्व दिया जाता है, क्योंकि उच्च कोटि के ज्ञान के सत्यान्वेषण के लिए विश्वविद्यालय ही प्रयोगशालाएँ हैं। किसी भी देश की उन्नति तथा विकास जिस तरह से नियोजित तथा गुणवत्तायुक्त शिक्षा से प्रभावित है, ठीक उसी तरह से प्रभावी तथा दक्ष शिक्षक से भी प्रभावित होती है, क्योंकि शिक्षक शिक्षा की धुरी होता है। विद्यार्थी अधिगम के लिए आधार शिक्षक के महत्व को स्वीकार करते हुए यूनेस्को (1994) ने अपनी

रिपोर्ट में कहा कि, शिक्षक 21वीं शताब्दी का नेतृत्वकर्ता होगा और कल के आधार अर्थात् युवाओं को व्यवहारिक तथा सशक्त पहचान देने में उसका प्रभावी योग होगा।

स्पष्ट है कि शिक्षा की सफलता अच्छी तरह से प्रशिक्षित तथा प्रभावी शिक्षक पर निर्भर है और कोई शिक्षक प्रभावी तथा योग्य तभी बन सकता है जब वह निरन्तर प्रशिक्षण लेता रहे तथा अपने ज्ञान का नवीनीकरण करता रहे। अतः इससे सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का उद्भव

---

\*शोध छात्रा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ.प्र.

\*\*प्राचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ.प्र.

होता है। सेवाकालीन शिक्षा के लिए अन्य देशों में पहले से ही प्रयास किया जा रहा है जैसे-स्वीडन तथा जर्मनी में नव नियुक्त शिक्षक अनुभवी शिक्षकों के साथ रहकर पेडागॉजिकल कोर्स के अतिरिक्त शिक्षण अभ्यास भी करते हैं।

यू.एस.ए. में इंट्रोडक्ट्री ट्रेनिंग जैसे कार्यक्रमों में प्रतिभागियों को अधिक से अधिक अंतःक्रिया के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण आवश्यकता को जब भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो पाते हैं कि हमारे देश में स्वतंत्रता पश्चात् शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए कुछ प्रयास किये गए हैं जैसे ग्रीष्मकालीन कक्षा, सेमीनार इत्यादि। इन कार्यक्रमों को पर्याप्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनके माध्यम से शिक्षक सुव्यवस्थित ढंग से निरंतर प्रशिक्षण नहीं ले सकते। आज एक शिक्षक को दक्ष बनने के लिए निरंतर प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिसके कारण निम्न हो सकते हैं-

- ज्ञान में वृद्धि के कारण पाठ्यचर्या निरन्तर बदलती रहती है, जिससे पूर्व तथा अद्य में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होना।
- विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या जो विभिन्न बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं उनको समझने के लिए।
- सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी के निरंतर प्रसार के कारण शिक्षक अपने कर्तव्यों का भली-भाँति पालन करने में स्वयं को बदली हुई परिस्थिति के बीच असमंजस्य की दशा में पा रहे हैं।

उपर्युक्त कारणों को देखते हुए विभिन्न आयोगों ने अपनी रिपोर्टों में उच्च शिक्षा में प्रशिक्षण की व्यवस्थित संस्था की परिकल्पना की जैसे-सेन कमेटी (1974) ने कहा कि उच्च शिक्षा स्तर के शिक्षकों को अपनी शिक्षण संबंधी समस्या पर अंतःक्रिया करने तथा व्यवसायिक विकास के अवसर मिलने चाहिए।

जेम्स रिपोर्ट (1972), मेयर रिपोर्ट, (1972-75), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अध्ययन में देखा गया कि उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षकों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि शिक्षा में गुणवत्ता के लिए शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण दिया जाए। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) द्वारा उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों को विभिन्न विषयों की शिक्षण तकनीकी तथा पेडागॉजी को सीखने के लिए ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रारूप की परिकल्पना की गयी जिसके फलस्वरूप सातवीं पंचवर्षीय योजना में यू.जी.सी. द्वारा 48 एकेडमिक स्टॉफ कॉलेजों (ए.एस.सी.) की स्थापना की गयी। ए.एस.सी. की उपयोगिता को देखते हुए इसके प्रसार का प्रयास किया जा रहा है। आज भारत में 51 ए.एस.सी. (यू.जी.सी. रिपोर्ट 2001-02) स्थापित किये जा चुके हैं।

आज जब ए.एस.सी. की संख्या बढ़ती जा रही है और उच्च शिक्षा में कार्यरत अध्यापकों के व्यवसायिक विकास के लिए मात्र यही एक संस्था है तो प्रश्न उठता है कि क्या ए.एस.सी. अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में पूर्ण सफल रहे हैं?

यही देखने का प्रयास इस शोध में किया गया है।

### अध्ययन के उद्देश्य एवं विधि

- एकेडेमिक स्टाफ़ कॉलेज में यू.जी.सी. द्वारा प्रतिपादित विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों के प्रति प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया का अध्ययन करना।
- ए.एस.सी. में यू.जी.सी. द्वारा प्रतिपादित नयी मूल्यांकन प्रणाली की उपादेयता के प्रति प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया का अध्ययन करना।
- ए.एस.सी. में यू.जी.सी. द्वारा प्रतिपादित विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों और नयी मूल्यांकन प्रणाली की उपादेयता के प्रति ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन।

### परिकल्पनाएँ

- यू.जी.सी. द्वारा प्रतिपादित विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों के प्रति ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- यू.जी.सी. द्वारा प्रतिपादित नयी मूल्यांकन प्रणाली के प्रति ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

### परिसीमा

इस अध्ययन में केवल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में होने वाले ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों को सम्मिलित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन के लिए स्वयं शोधकर्ता द्वारा निर्मित प्रश्नावली प्रपत्र

का प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है।

### न्यादर्श

इस अध्ययन के न्यादर्श के लिए इलाहाबाद ए.एस.सी. के कला वर्ग रिफ्रेशर कोर्स तथा ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागियों को लिया गया है जिसमें रिफ्रेशर कोर्स के 70 तथा ओरिएंटेशन कोर्स के 60 प्रतिभागियों अर्थात् 130 शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।

### आंकड़ों का विश्लेषण तथा व्याख्या

प्रदत्तों का विश्लेषण तथा व्याख्या उद्देश्य के अनुसार गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों विधियों के द्वारा किया गया। गुणात्मक विधि में दोनों कोर्स के प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

परिमाणामात्मक विधि में अंक प्रदान करके आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है जैसे- बहुत अधिक लाभदायक, अधिक लाभदायक, औसत, कम लाभदायक, बहुत कम लाभदायक को क्रमशः 5, 4, 3, 2, 1 अंक प्रदान किये गए हैं। फिर ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों के मध्य तुलना के लिए प्रतिशत, काई वर्ग ( $X^2$ ) का प्रयोग सार्थकता स्तर को ज्ञात करने के लिए किया गया है।

**पुनश्चर्या तथा ओरिएंटेशन कोर्स में भाग लेने से पूर्व प्रतिभागियों की अपेक्षा-** गुणात्मक विश्लेषण निम्न प्रकार है-

**ज्ञान में वृद्धि :** रिफ्रेशर कोर्स तथा ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागियों की अपेक्षा थी

कि ए.एस.सी. द्वारा संचालित कार्यक्रम द्वारा उनके ज्ञान में अपेक्षित रूप से वृद्धि होगी किंतु जहाँ रिफ्रेश कोर्स के 94.29% प्रतिभागी इसे अधिक ज्ञान वृद्धि में सहायक मानते हैं वहीं ओरिएंटेशन कोर्स के केवल 60% प्रतिभागी ही इसे ज्ञान वृद्धि में सहायक मानते हैं। इससे यह निश्चित होता है कि दोनों ही कोर्स के प्रतिभागी ए.एस.सी. द्वारा संचालित कार्यक्रमों को ज्ञान वृद्धि में सहायक मानते हैं।

**शिक्षण दक्षता में वृद्धि :** ए.एस.सी. द्वारा सेवाकालीन शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम इस उद्देश्य से आयोजित किए जाते हैं कि इन कार्यक्रमों में भाग लेने से उनकी शिक्षण दक्षता में वृद्धि होगी तथा वे इन कोर्सों के पश्चात् स्वयं को और अच्छी तरह छात्रों के समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे। किन्तु जहाँ ओरिएंटेशन कोर्स के 58% प्रतिभागी इस मत से सहमति रखते हैं वहीं रिफ्रेश कोर्स के 49% प्रतिभागी ही इसे शिक्षण दक्षता वृद्धि में सहायक मानते हैं।

**परस्पर परिचर्चा से लाभ :** इन कार्यक्रमों का एक उद्देश्य यह भी है कि इनके द्वारा अध्यापकों को परस्पर परिचर्चा का अवसर मिलेगा, जिससे वे दूसरे क्षेत्रों के लोगों की संस्कृति तथा आचार-विचार को जानेंगे और परस्पर अंतःक्रिया द्वारा वे अपने ज्ञान में सुधार करेंगे, किंतु इसे जहाँ रिफ्रेश कोर्स के 52.86% प्रतिभागी अधिक उपयुक्त मानते हैं वहीं ओरिएंटेशन के 51% प्रतिभागी इसे उपयुक्त मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि दोनों कोर्स के प्रतिभागी ही परस्पर परिचर्चा को लाभदायक मानते हैं।

**सूचना प्रौद्योगिकी का ज्ञान :** ओरिएंटेशन तथा रिफ्रेश कोर्स के प्रतिभागियों द्वारा यह अपेक्षित है कि उन्हें इस कोर्स द्वारा शिक्षा के नवाचार जैसे-उचित संप्रेषण तथा प्रबंधन, इ-अधिगम, ई-कॉमर्स और इसका समाज में महत्व तथा सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तृत ज्ञान होगा। इस विचार से जहाँ ओरिएंटेशन कोर्स के 75% प्रतिभागी सहमति रखते हैं वहीं रिफ्रेश कोर्स के केवल 65% प्रतिभागी ही ऐसी अपेक्षा करते हैं। इससे स्पष्ट है कि आज सूचना प्रौद्योगिकी को लेकर सभी उत्सुक हैं। अतः इसके लिए दोनों कोर्स के प्रतिभागी अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने की आशा करते हैं।

**व्यवसायिक विकास :** इस कोर्स में भाग लेने वाले अधिकतर प्रतिभागियों की अपेक्षा थी कि यह कोर्स उनके व्यवसायिक विकास में या सीनियर ग्रेड दिलाने में सहायक होगा। इस विचार से जहाँ ओरिएंटेशन कोर्स के अधिकतम प्रतिभागी सहमत हैं वहीं रिफ्रेश कोर्स के 40% प्रतिभागी ही सहमति व्यक्त करते हैं।

**ए.एस.सी. कार्यक्रम में प्रतिभाग पश्चात् हुए लाभ पर प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया**  
ए.एस.सी. कार्यक्रम के प्रतिभागियों द्वारा इसके लाभ पर व्यक्त की गयी प्रतिक्रिया का गुणात्मक विश्लेषण निम्न प्रकार है-

**विभिन्न विद्वानों के व्याख्यानों से ज्ञान में वृद्धि :** ए.एस.सी. में प्रतिभाग करने वाले 82% प्रतिभागियों द्वारा यह सर्वस्वीकृत किया गया कि इस कार्यक्रम के द्वारा उनके ज्ञान में वृद्धि हुई है। ए.एस.सी. कार्यक्रम में जो भी विद्वान आता



है वह अपने क्षेत्र का विज्ञ होता है, जिसके कारण उनके ज्ञान से सभी लाभान्वित होते हैं रिफ्रेशर कोर्स के 94% प्रतिभागियों द्वारा इस बात की पुष्टि की गयी जबकि ओरिएंटेशन कोर्स के 67% प्रतिभागी ही इस बात से सहमति व्यक्त करते हैं।

**तकनीकी ज्ञान :** इलाहाबाद ए.एस.सी. कार्यक्रम में भाग लेने वाले प्रतिभागी यह मानते हैं कि उन्हें विभिन्न तकनीकियों का ज्ञान हुआ, किंतु यह औसत दर्जे का था। कार्यक्रम में जो भी ज्ञान दिया जाता है उसको अगर तकनीकी माध्यमों (कम्प्यूटर, इण्टरनेट) का प्रयोग करके पढ़ाया/सिखाया जाता तो वे अधिक लाभान्वित होते। तकनीकी माध्यमों के प्रयोग को लेकर जहाँ रिफ्रेशर कोर्स के अधिकांश प्रतिभागियों में संतोष था तो वहीं ओरिएंटेशन कोर्स के 62% प्रतिभागियों का मानना था कि वे तकनीकी ज्ञान का बहुत ज्यादा लाभ नहीं पाते हैं।

**परस्पर परिचर्चा से लाभ :** इस कार्यक्रम में प्रतिभाग करने वाले उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत 47% शिक्षक मानते हैं कि इसके द्वारा उन्हें दूसरे प्रतिभागियों से परिचर्चा करने का अवसर मिलता है, जिससे वे प्रतिभागियों के बीच अनुभव के आदान-प्रदान तथा परस्पर एक दूसरे से सीखने का अवसर प्राप्त करते हैं। किंतु 39% शिक्षक यह मानते हैं कि उन्हें दूसरे प्रतिभागियों से परिचर्चा का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता।

**शिक्षण दक्षता में वृद्धि :** इलाहाबाद ए.एस.सी. में प्रतिभाग करने वाले शिक्षक सर्वसम्मति से स्वीकृत करते हैं कि इस कार्यक्रम द्वारा उन्हें

विविध शिक्षण विधियों का ज्ञान हुआ है जिसके कारण वे अपने शिक्षण कर्तव्य को अच्छी तरह निभाने में समर्थ हुए हैं।

**स्व विषयों के नवाचारों का ज्ञान :** रिफ्रेशर कोर्स के 94% प्रतिभागी मानते हैं कि उन्हें इस कार्यक्रम के द्वारा अपने विषय के बहुत से नवाचारों का ज्ञान हुआ है। कुछ ऐसे तथ्य थे जिनके विषय में वे नहीं जानते थे या बहुत कम जानकारी रखते थे। इसलिए रिफ्रेशर कोर्स को अधिक प्रोत्साहित किया जाए ताकि अन्य शिक्षक भी इसका लाभ ले सकें। इस विषय पर ओरिएंटेशन कोर्स के केवल 40% प्रतिभागी सहमति रखते हैं जिनका कारण ओरिएंटेशन कोर्स में कोई विषय विशेष का न पढ़ाना हो सकता है।

**विविध विषय तथा अनुसंधान का ज्ञान :** ओरिएंटेशन कोर्स के 55% प्रतिभागियों का मानना है कि उन्होंने इस कार्यक्रम के द्वारा अन्य विषयों के बारे में बहुत सारी बातों को सीखा जिन्हें पूर्व में सीखने का अवसर नहीं मिला था। इसके साथ ही दोनों कोर्स के प्रतिभागियों ने यह माना कि उन्हें जो विविध प्रोजेक्ट वर्क तथा अनुसंधान के विषय में बताया गया वे उससे लाभान्वित हुए हैं।

#### सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत विषय

- |                              |     |
|------------------------------|-----|
| 1. योग और मानसिक स्वास्थ्य   | 60% |
| 2. कम्प्यूटर और सूचना तकनीकी | 54% |
| 3. माइक्रोटीचिंग पाठ         | 50% |
| 4. अच्छे अध्यापक कैसे बनें   | 45% |
| 5. शिक्षा और मानवीय मूल्य    | 45% |

**मूल्यांकन विधियों के प्रति प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया**

तालिका 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माइक्रोटीचिंग पाठ, बुक रीव्यू व साक्षात्कार आधारित मूल्यांकन का कार्ई मान क्रमशः 13.22, 11.26 तथा 12.4 आया है जो कि (df= 4) 0.05 सार्थकता स्तर के तालिका मान से अधिक है। अतः इन विधियों में 0.05 सार्थकता स्तर पर नकारात्मक परिकल्पना को अस्वीकार करते हुए कह सकते हैं कि ओरिएंटेशन कोर्स तथा रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों में विभिन्न मूल्यांकन विधियों के प्रयोग के प्रति सार्थक अन्तर है।

माइक्रोटीचिंग प्रैक्टिस तथा 'बुक रीव्यू' मोड्स के प्रति जहाँ ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागी अधिक सकारात्मक व्यवहार को प्रदर्शित करते हुए 88.33% लोग इसे सर्वाधिक उपयोगी मानते हैं तो वहीं रिफ्रेशर कोर्स के केवल 61.43% लोग ही इसके पक्ष में हैं।

ठीक इसी तरह साक्षात्कार आधारित मूल्यांकन के प्रति ओरिएंटेशन कोर्स के 90% लोग इसे उपयोगी मानते हैं तो रिफ्रेशर कोर्स के 71.42% लोग ही इसके प्रति सकारात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं।

तालिका 1

**मूल्यांकन विधियों के प्रति प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया**

| क्रम विषय              | रिफ्रेशर    |             |             |            |            |          | ओरिएंटेशन   |             |           |           |            |     | X <sup>2</sup> मान<br>df=4 |
|------------------------|-------------|-------------|-------------|------------|------------|----------|-------------|-------------|-----------|-----------|------------|-----|----------------------------|
|                        | ब.अ.        | अ.ल.        | औसत         | क.ल.       | व.क.       | योग      | ब.अ.        | अ.ल.        | औसत       | क.ल.      | व.क.       | योग |                            |
| 1. सेमिनार प्रेजेंटेशन | 41<br>58.57 | 22<br>31.43 | 4<br>5.71   | 2<br>2.86  | 1<br>1.43  | 45<br>70 | 11<br>75    | 2<br>15.71  | 1<br>3.33 | 1<br>1.67 | 1<br>1.67  | 60  | 4.105                      |
| 2. माइक्रोटीचिंग लेसन  | 31<br>44.29 | 12<br>17.14 | 12<br>17.14 | 9<br>12.86 | 6<br>8.57  | 70       | 30<br>55    | 20<br>33.33 | 3<br>5    | 2<br>3.33 | 2<br>3.33  | 60  | *                          |
| 3. बुक रीव्यू          | 18<br>25.71 | 26<br>37.14 | 8<br>11.43  | 9<br>12.86 | 9<br>12.96 | 70       | 28<br>46.67 | 23<br>38.33 | 5<br>8.33 | 2<br>3.33 | 2<br>3.33  | 60  | *                          |
| 4. साक्षात्कार         | 18<br>25.71 | 32<br>45.71 | 12<br>17.14 | 6<br>8.57  | 2<br>2.86  | 70       | 30<br>50    | 24<br>40    | 3<br>5    | 1<br>1.67 | 2<br>3.33  | 60  | *                          |
| 5. लिखित परीक्षण       | 29<br>41.43 | 20<br>28.57 | 10<br>14.28 | 8<br>11.43 | 3<br>4.29  | 70       | 29<br>48.33 | 13<br>21.67 | 9<br>15   | 2<br>3.33 | 7<br>11.67 | 60  | 5.994                      |

संकेताक्षर—

ब.अ.ल. (बहुत अधिक लाभदायक)  
क.ल. (कम लाभदायक)

अ.ल. (अधिक लाभदायक)  
व.क.ल. (बहुत कम लाभदायक)

\*/\*\*·05/·01 स्तर पर सार्थक

तालिका 2  
 ए.एस.सी. प्रतिभागियों द्वारा मूल्यांकन की उपयुक्तता पर प्रतिक्रिया

| विषय  | ब.अ.ल.        | अ.ल.          | औसत           | क.ल.         | व.क.ल.       | योग<br>df=4 | X <sup>2</sup> मान |
|---|---------------|---------------|---------------|--------------|--------------|-------------|--------------------|
| रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया   | 27<br>(35.57) | 16<br>(22.66) | 11<br>(15.71) | 8<br>(11.43) | 8<br>(11.43) | 70          | **<br>14.43        |
| टोरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया | 28<br>(46.67) | 25<br>(41.67) | 5<br>(8.33)   | 1<br>(1.67)  | 1<br>(1.67)  | 60          |                    |

संकेताक्षर—

ब.अ.ल. (बहुत अधिक लाभदायक)

क.ल. (कम लाभदायक)

अ.ल. (अधिक लाभदायक)

व.क.ल. (बहुत कम लाभदायक)

\*/\*\*/05/01 स्तर पर सार्थक

अन्य विधियों के प्रति रिफ्रेशर तथा ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया लगभग समान स्तर की है।

मूल्यांकन की उपर्युक्त विधियों के प्रति प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया में अंतर है इसका कारण ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागियों का कम अनुभवी होना है तथा इन विधियों का प्रयोग करके स्वयं को दक्ष शिक्षक बनाना है।

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ए.एस.सी. द्वारा प्रयुक्त मूल्यांकन की उपयुक्तता पर प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया का जब विश्लेषण किया गया है तो काई स्क्वायर का मान 14.43 आया जो (df=4) 0.05 तथा .01 सार्थकता स्तरों के तालिका मानों से अधिक है। अतः हम कह सकते हैं कि यह पद 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अतः यहाँ पर नकारात्मक परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है, कि रिफ्रेशर कोर्स तथा ओरिएंटेशन

कोर्स के प्रतिभागियों के बीच मूल्यांकन की उपयुक्तता को लेकर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

प्रतिशतिय विश्लेषण में पाते हैं कि जहाँ ओरिएंटेशन कोर्स के 88.34% लोग ए.एस.सी. द्वारा प्रयुक्त मूल्यांकन को उपयुक्त मानते हैं तो वहीं, रिफ्रेशर कोर्स के केवल 61.43% प्रतिभागी ही इसको स्वीकार करते हैं।

अतः कह सकते हैं कि ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागी ए.एस.सी. द्वारा होने वाले मूल्यांकन को उपयुक्त तथा व्यवसायिक विकास के लिए उपयोगी मानते हैं तो वहीं रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों द्वारा यह मूल्यांकन पद्धति कम उपयोगी मानी जाती है।

तालिका 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ए.एस.सी. द्वारा की जाने वाली ग्रेडिंग के योगदान को जानने के लिए जब प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया गया तो काई स्क्वायर का

तालिका 3

शैक्षिक व्यवसाय में मूल्यांकन तथा ग्रेडिंग प्रणाली के योगदान पर प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया

| क्रम विषय  | रिफ्रेशर    |             |             |            |            |     | ओरिएंटेशन   |             |            |           |            |     | $X^2$<br>मान<br>df=4 |
|--|-------------|-------------|-------------|------------|------------|-----|-------------|-------------|------------|-----------|------------|-----|----------------------|
|  | ब.अ.<br>ल.  | अ.ल.        | औसत         | क.ल.       | व.क.<br>ल. | योग | ब.अ.<br>ल.  | अ.ल.        | औसत        | क.ल.      | व.क.<br>ल. | योग |                      |
| 1. ए.एस.सी में प्रतिभागिता के दौरान क्रियाशील रखने में   | 33<br>47.14 | 23<br>32.86 | 11<br>15.71 | 2<br>2.86  | 1<br>1.43  | 70  | 37<br>61.67 | 14<br>23.33 | 6<br>10    | 1<br>1.67 | 2<br>2.33  |     |                      |
| 2. एकेडमिक गतिविधियों आपके सबल तथा निर्बल पक्ष जानने में | 30<br>42.86 | 24<br>34.29 | 13<br>18.57 | 2<br>2.86  | 1<br>1.43  | 70  | 32<br>53.33 | 18<br>30    | 8<br>13.33 | 1<br>1.67 | 1<br>1.67  | 60  | 1.67                 |
| 3. शिक्षण दक्षताओं में सुधार के लिए विकास                | 36<br>51.43 | 25<br>35.71 | 4<br>5.71   | 3<br>4.29  | 2<br>2.86  | 70  | 35<br>58.33 | 19<br>31.67 | 2<br>3.33  | 2<br>3.33 | 2<br>3.33  | 60  | 0.92                 |
| 4. रिसर्च प्रोजेक्ट के लिए विकास                         | 41<br>58.57 | 17<br>24.29 | 8<br>11.43  | 2<br>2.86  | 2<br>2.86  | 70  | 30<br>50    | 24<br>33.33 | 6<br>10    | 2<br>3.33 | 2<br>3.33  | 60  | 1.47                 |
| 5. मूल्यांकन के लिए सहयोगात्मक स्फूर्ति का विकास         | 25<br>35.71 | 28<br>40    | 7<br>10     | 8<br>11.43 | 2<br>2.86  | 70  | 29<br>48.33 | 21<br>35    | 5<br>8.33  | 3<br>5    | 2<br>3.33  | 60  | 3.15                 |

संकेताक्षर—

ब.अ.ल. (बहुत अधिक लाभदायक)

अ.ल. (अधिक लाभदायक)

क.ल. (कम लाभदायक)

ब.क.ल. (बहुत कम लाभदायक)

मान सभी पाँचों पदों में df=4 पर .01, .05 नहीं है। अतः यहाँ वैकल्पिक परिकल्पना को सार्थकता स्तर के तालिका मानों से कम आता अस्वीकार किया जाता है तथा नकारात्मक है। अतः स्पष्ट है कि रिफ्रेशर कोर्स तथा ओरिएंटेशन कोर्स की प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया सकता है कि दोनों में कोई सार्थक अंतर में .01 सार्थकता स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रतिशतीय विश्लेषण से पता चलता है कि सभी पांचों पदों-ए.एस.सी. में स्वयं को क्रियाशील रखने में, प्रतिभागी स्वयं का बौद्धिक स्तर जानने, अपनी दक्षता में सुधार करने, डॉक्टरल वर्क के विषय में जानने, सहयोगात्मक स्फूर्ति का विकास करने में मूल्यांकन को जिस प्रकार रिफ्रेशर कोर्स के 59% प्रतिभागी उपयोगी मानते हैं ठीक उसे तरह से ओरिएंटेशन कोर्स के भी 58.33% प्रतिभागी उपयोगी मानते हैं।

इसी प्रकार ए.एस.सी. में प्रयुक्त ग्रेडिंग प्रणाली तथा इससे होने वाले लाभ को जितना उपयोगी रिफ्रेशर कोर्स के प्रतिभागी मानते हैं उतना ही ओरिएंटेशन कोर्स के भी।

**ए.एस.सी. प्रतिभागियों द्वारा इस कार्यक्रम को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव-**

- **शिक्षा में श्रुत्य-दृश्य यांत्रिक उपकरणों का उपयोग :** इलाहाबाद ए.एस.सी. प्रतिभागियों का यह मानना था कि इस कार्यक्रम में व्याख्यान के समय यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग करके और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इस बात से जहाँ रिफ्रेशर कोर्स के 50% प्रतिभागी सहमति देते हैं वहीं ओरिएंटेशन कोर्स के सर्वाधिक 75% सहमति व्यक्त करते हैं।
- **रहने की उचित व्यवस्था की जाए-** इलाहाबाद ए.एस.सी. प्रतिभागियों का यह मानना था कि यहाँ पर प्रतिभागियों के रहने की उचित व्यवस्था नहीं की गयी थी जिसके कारण उन्हें काफी परेशानियाँ उठानी पड़ीं। रिफ्रेशर कोर्स के 40% प्रतिभागियों का

मानना था कि छात्रावास की उचित व्यवस्था करते हुए महिलाओं के ठहरने की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए वहीं ओरिएंटेशन कोर्स के 55% प्रतिभागियों ने महिला तथा पुरुष प्रतिभागी दोनों के लिए ही उचित व्यवस्था की मांग की।

- **पुस्तकालय की उचित व्यवस्था हो-** इलाहाबाद ए.एस.सी. प्रतिभागियों का मानना था कि उन्हें अध्ययन के लिए पर्याप्त समय तक पुस्तकालय सुविधा उपलब्ध नहीं करायी गई। रिफ्रेशर कोर्स के 60% प्रतिभागियों का मानना था कि पुस्तकालय द्वारा जो पुस्तकें उन्हें दी जाती हैं, वे पुरानी होती हैं जिससे उन्हें काफी समस्या हुई। वहीं ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागियों की शिकायत थी कि कार्यक्रम लम्बे समय तक चलने के कारण उन्हें पुस्तकालय से लाभ उठाने का समय नहीं मिलता।
- **ए.एस.सी. को व्यापक स्तर पर स्थापित किया जाए -** ए.एस.सी. प्रतिभागियों का मानना था कि हमारे देश में ए.एस.सी. की संख्या बहुत कम है और प्रतिभागियों की संख्या इसकी अपेक्षा बहुत अधिक जिसके कारण उन्हें कभी-कभी इस कोर्स के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है। अतः वे चाहते हुए भी कभी-कभी इस कार्यक्रम में भाग नहीं ले पाते। इस बात से जहाँ रिफ्रेशर के 40% प्रतिभागी सहमत थे वहीं ओरिएंटेशन के 60% प्रतिभागियों ने इसके प्रति सहमति व्यक्त की।

- **मूल्यांकन को पारदर्शी बनाया जाए-** ए.एस.सी. प्रतिभागियों द्वारा यह मांग की गई है कि मूल्यांकन को पारदर्शी बनाया जाए। इसके साथ ही उनका कहना था कि लिखित परीक्षा में प्रश्नों की संख्या बहुत अधिक होती है, जिसे कम किया जाना चाहिए। रिक्रेशर कोर्स के प्रतिभागियों द्वारा यह मांग की गई कि मूल्यांकन में ग्रेडिंग प्रणाली में पारदर्शिता लायी जाए। ओरिएंटेशन कोर्स के 50% प्रतिभागी इस बात से सहमत व्यक्त करते हैं।
- **स्तरीय विद्वानों द्वारा विविध विषयों पर व्याख्यान दिलाया जाए-** प्रतिभागियों का कहना था कि व्याख्यान के लिए स्तरीय विद्वानों को आमंत्रित किया जाए। इसके साथ ही योग, पर्यावरण तथा माइक्रोटीचिंग पर अधिक से अधिक लेक्चर की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- अधिकाधिक प्रतिभागी दक्ष शिक्षक बनने के लिए इस कार्यक्रम को करना चाहते हैं।
- एस.सी.सी. में प्रयुक्त मूल्यांकन विधियों में माइक्रोटीचिंग प्रैक्टिस, बुक रिव्यू, साक्षात्कार तथा मूल्यांकन की उपयुक्तता को लेकर सभी प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया समान स्तर की नहीं है। इन पदों के प्रति ओरिएंटेशन कोर्स के प्रतिभागी अधिक सकारात्मक हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि इन विधियों के द्वारा वे अपने व्यवसायिक तथा व्यक्तित्व विकास के लक्ष्य को अधिकाधिक प्राप्त कर सकते हैं।
- ए.एस.सी. में ग्रेडिंग प्रणाली के लाभ, लिखित परीक्षण तथा सेमिनार को लेकर सभी प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया समान स्तर की है। अर्थात् अधिकाधिक प्रतिभागी चाहते हैं कि इन गतिविधियों को कराया जाए।

### सुझाव

### निष्कर्ष

- 75% प्रतिभागी सेमिनार प्रेजेंटेशन को बहुत अधिक उपयोगी मानते हैं।
- 89% शिक्षक ए.एस.सी. के लिखित परीक्षण की महत्ता को स्वीकार करते हैं।
- 96% शिक्षक मानते हैं कि ग्रेडिंग प्रणाली के कारण ही वे इस कोर्स में क्रियाशील योगदान दे सके।
- 58% शिक्षक ए.एस.सी. मूल्यांकन को अपने लिए फीडबैक मानते हुए इसे बहुत उपयोगी मानते हैं।
- एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज में शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान व्याख्यान के अतिरिक्त प्रतिभागियों से प्रयोगात्मक कार्य भी करवाया जाए।
- लिखित परीक्षण के लिए बनाए जाने वाले प्रश्न-पत्र को हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों में बनाया जाए।
- प्रतिभागियों को शिक्षण में दक्ष होने के लिए व्यक्तिगत रूप से फीडबैक दिया जाना चाहिए।
- रिक्रेशर तथा ओरिएंटेशन कोर्स में व्याख्यान देने के लिए चुने हुए स्तरीय विद्वानों को आमंत्रित करना चाहिए।

- रिफ्रेशर तथा ओरिएंटेशन कोर्स की दैनिक अवधि को कम किया जाए।
- उच्च शिक्षा स्तर के सभी शिक्षकों को दक्ष शिक्षक बनने के लिए ओरिएंटेशन कोर्स को अनिवार्य बनाया जाए।
- ए.एस.सी. प्रतिभागियों के ठहरने की उचित आवास की व्यवस्था की जाए।
- प्रतिभागियों ने प्रशिक्षण के दौरान जो कुछ भी सीखा है उसका व्यावहारिक रूप से प्रयोग करने का सुझाव भी सिखाया जाए।

### संदर्भ

1. सिंह, जी. 1999. एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज, एन एसैसमेंट, यूनिवर्सिटी न्यूज, वॉल्यूम 35 (14).
2. त्रिवेदी, आ.एस. 2000. द स्टॉफ कॉलेज, एनअदर एक्टिविटी ट्रेप, यूनिवर्सिटी न्यूज, वॉल्यूम 38 (29)
3. बोस, एस. 2005 इनहेंसिंग प्रोफेशनलिज्म इन टीचर : एन एक्सप्लोरेशन, न्यू फ्रन्टियर इन एजुकेशन, वॉल्यूम 35, अंक 4, अक्टूबर 2005.
4. शर्मा, वी.एम. 2004. टीचर ट्रेनिंग एण्ड एजुकेशन रिसर्च, कॉमनवेलथ पब्लिशर, नई दिल्ली पृ. 3.
5. शर्मा, जे.पी. 2006. ट्रेनिंग एण्ड डेवलपमेंट ऑफ द एकेडमिक स्टॉफ : ए स्टडी, यूनिवर्सिटी न्यूज 44. 11, मार्च 13-19, पीपी 1-5.
6. यूनेस्को, 1998. यूनेस्को रिपोर्ट : टीचर एण्ड टीचिंग इन ए चेंजिंग वर्ल्ड, डीविजन ऑफ हायर एजुकेशन, यूनेस्को।
7. अग्रवाल जे.पी. 1992. एजुकेशन पॉलिसी इन इंडिया
8. मैथ्यू जार्ज 2001. टीचर एटीट्यूड टूवर्ड इवैल्यूशन ऑफ टीचर्स बाई स्टूडेंट, यूनिवर्सिटी न्यूज, 39 10, अप्रैल, पृ. 1-9.

# सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का अध्ययन

राजेश कुमार सिंह\*

राजेन्द्र कुमार जायसवाल\*\*

अध्यापन के कार्यक्षेत्र में कार्य संतोष अध्यापक के लिए एक प्रकार की अभिप्रेरणा है, जिसके फलस्वरूप अध्यापक अपना कार्य संपादित करने में आनन्द की अनुभूति करता है। यह कार्य संतोष केवल वैयक्तिक स्तर तक सीमित होता है इसकी व्याख्या हम सामूहिक रूप में नहीं कर सकते हैं। क्योंकि कार्य संतोष किसी अध्यापक में अंतर्निहित उन सभी मनोवृत्तियों का परिणाम होता है। जिसे एक अध्यापक अपने अध्यापन व्यवसाय के जीवनकाल में बनाए रखने का प्रयास करता है।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास होता है यह मत आदि काल से ही शिक्षाविदों का रहा है और यह निर्विवाद सत्य भी है। यही कारण है कि समाज ने आरम्भिक काल से ही बालकों के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा सुनिश्चित करके उसे कार्य रूप में परिणित करने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व अध्यापकों को सौंप दिया। यही कारण है कि अध्यापन के व्यवसाय को राष्ट्र निर्माण के कार्य से जोड़कर इसे विशेष महत्व दिया गया है क्योंकि अध्यापक ही भावी नागरिकों के चरित्र का निर्माता, मानवीय मूल्यों का निर्धारक और अनुशासन का स्तंभ होता है। एक प्रकार से एक योग्य अध्यापक अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र एवं

समाज का प्रमुख निर्माता होता है। डॉ. सयद्दीन ने एक अध्यापक की महत्ता को बताते हुए कहा है कि—

“यदि आप किसी देश की जनता के सांस्कृतिक स्तर को मापना चाहते हैं तो इसका अच्छा तरीका यह है कि आप मालूम करें कि उस समाज में अध्यापकों की सामाजिक स्थिति क्या है तथा उन्हें कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त है।”

21वीं शताब्दी में भौतिकता का अत्यधिक विस्तार होने तथा ज्ञान के क्षेत्र की व्यापकता के कारण शिक्षा में अमूल्य परिवर्तन दिन प्रतिदिन तीव्रगति से हो रहा है।

\*वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, (उ.प्र.)

\*\*प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, किसान महाविद्यालय, पैकोली (हाटा) कुशीनगर, (उ.प्र.)



जिससे अध्यापकों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ, उनका स्वयं का व्यक्तित्व और अध्यापन कार्य संतोष तीनों ही प्रभावित हो रहे हैं। अध्यापन के कार्यक्षेत्र में कार्य संतोष अध्यापक के लिए एक प्रकार की अभिप्रेरणा है, जिसके फलस्वरूप अध्यापक अपना कार्य सम्पादित करने में आनन्द की अनुभूति करता है। यह कार्य संतोष केवल वैयक्तिक स्तर तक सीमित होता है इसकी व्याख्या हम सामूहिक रूप में नहीं कर सकते हैं। क्योंकि कार्य संतोष किसी अध्यापक में अंतर्निहित उन सभी मनोवृत्तियों का परिणाम होता है जिसे एक अध्यापक अपने अध्यापन व्यवसाय के जीवन काल में बनाए रखने का प्रयास करता है।

### शोध समस्या का कथन

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु सरकारी तथा निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि में क्या कोई अंतर है, अथवा नहीं? इन दोनों प्रकार के विद्यालयों में अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए शोध-कार्य हेतु निम्न प्रकरण का चयन किया गया है-

**सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का अध्ययन**

### शोध कार्य का औचित्य

वर्तमान समय में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी तथा निजी दोनों तरह की संस्थाओं द्वारा

इस कार्य को संपादित किया जा रहा है। इनमें सरकारी स्तर पर परिषदीय विद्यालय, केंद्रीय विद्यालय, राज्य सरकार द्वारा अनुदानित प्राथमिक विद्यालय सम्मिलित हैं। विद्यालयों की विभिन्नता और शिक्षकों के वेतनमान में, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की भिन्नताएँ इन अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि को प्रभावित करती हैं।

अतः प्रस्तुत शोधकार्य इन संस्थाओं के अध्यापकों के कार्य-संतुष्टि में क्या कोई सार्थक अंतर है? का अध्ययन किया गया है।

### उद्देश्य

इस शोध कार्य को सम्पन्न करने के लिए शोध उद्देश्य का निर्धारण किया गया है जो निम्नांकित हैं -

- सरकारी एवं निजी विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
- सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों एवं निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष एवं महिला अध्यापिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं एवं निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।

- सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
- निजी प्राथमिक विद्यालय के महिला एवं पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।

### परिकल्पना

तुलनात्मक अध्ययन हेतु निम्नांकित निराकरणाय परिकल्पनाओं की संरचना की गयी है -

- सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापक एवं निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष एवं महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला

अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

### शोध कार्य की परिसीमाएँ

प्रस्तुत शोधकार्य का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत होने के कारण केवल गोरखपुर मण्डल के दो जिले-गोरखपुर व महाराजगंज के शहरी व ग्रामीण क्षेत्र से 200 अध्यापकों को चयनित किया गया।

### शोध अभिकल्प

प्रस्तुत शोधकार्य विवरणात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रकार का अनुसंधान है। इस प्रकार के अनुसंधान में घटित हो चुकी घटनाओं अथवा चल रही परंपराओं, अभिवृत्तियों, मानकों आदि का सर्वेक्षण के आधार पर वर्तमान वस्तुस्थिति का अध्ययन तथा भविष्य की प्रत्याशाओं का आकलन किया जाता है।

### जनसंख्या तथा प्रतिदर्श

शोधकार्य के अध्ययन हेतु जनसंख्या के रूप में गोरखपुर तथा महाराजगंज के सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के समस्त अध्यापक इस शोध अध्ययन की जनसंख्या हैं।

### प्रतिदर्श

प्रतिदर्श के रूप में शिक्षकों का चयन हेतु सर्वप्रथम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय, महाराजगंज तथा गोरखपुर से सरकारी व निजी प्राथमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गयी।

तत्पश्चात् इन जनपदों से विद्यालयों का चयन लाटरी विधि द्वारा किया गया। प्रतिदर्श के लिए चयनित सभी (सरकारी तथा निजी) प्राथमिक विद्यालय में सेवारत अध्यापकों में से 200 अध्यापकों (100 सरकारी प्राथमिक विद्यालय के तथा 100 निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों) का चयन आकस्मिक विधि से किया गया है और परीक्षण के दिन विद्यालय में उपलब्ध अध्यापकों से “अध्यापक कृत्य-संतोष मापनी” पूरित करायी गयी।

### मापन के उपकरण का प्रशासन एवं आंकड़ों का संकलन

अध्यापक कार्य-संतोष मापनी का प्रशासन विद्यालय के प्राचार्य की अनुमति से विद्यालय में उपस्थित अध्यापकों से पूरित कराया गया। पूरित मापनी जो 5 बिंदुओं पर प्रतिक्रियाओं हेतु निर्मित थी उसका अंकन-पूर्णत सहमत पर 5 अंक, सहमत पर 4 अंक, अनिश्चित पर 3 अंक, असहमत पर

2 अंक तथा पूर्णतः असहमत पर 1 अंक आवंटित करके अंकन कार्य किया गया और इस आधार पर प्रत्येक अध्यापक कृत्य-संतोष मापनी पर प्राप्तांक संकलित किया गया।

### प्रयुक्त सांख्यिकी विधियाँ

इस शोध कार्य के अंतर्गत प्राप्त आँकड़ों का सरकारी एवं निजी प्राथमिक संस्थाओं के महिला व पुरुष अध्यापकों के आधार पर मध्यमान तथा प्रमाणित विचलन की गणना की गई। विभिन्न समूहों के मध्य तुलना हेतु क्रांतिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

### आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

सरकारी तथा निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतोष का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु ‘अध्यापक कृत्य-संतोष मापनी’ द्वारा प्राप्त विभिन्न वर्ग के प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के अंकों का

तालिका 1

सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं. | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |     |
|--------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|-----|
|        |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1 |
| 1.     | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 100    | 330.5   | 23.80           | 3.91             | है               | है  |
| 2.     | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 100    | 317.9   | 21.8            |                  |                  |     |

तालिका 2  
सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की  
कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं. | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |     |
|--------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|-----|
|        |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1 |
| 1.     | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 40     | 323.5   | 14.00           | 2.88             | है               | है  |
| 2.     | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 40     | 311.5   | 18.3            |                  |                  |     |

मध्यमान, प्रामाणिक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात ज्ञात किया गया है।

तालिका 1 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों का मध्यमान क्रमशः 330.5 तथा 317.9 प्राप्त हुआ। जबकि प्रामाणिक विचलन का मान क्रमशः 23.80 व 2.18 है। दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 3.91 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोध कार्य के पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और यह कहा जा सकता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों तथा निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की कार्य संतोष के मध्य सार्थक अंतर है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का मध्यमान निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के मध्यमानों से अधिक है अर्थात् सरकारी प्राथमिक विद्यालय के

अध्यापकों में अपने व्यवसाय के प्रति संतोष निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की तुलना में बेहतर है।

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का मध्यमान के आधार पर तुलना करने हेतु ज्ञात किए गए क्रान्तिक-अनुपात का मान 2.88 हुआ है जो कि सार्थकता स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोधकार्य के पूर्व बनाई गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और यह कहा जा सकता है कि सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों के मध्य सार्थक अंतर है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों का मध्यमान निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों के मध्यमान से अधिक है अर्थात् सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों का अपने व्यवसाय के प्रति कार्य संतोष निजी

तालिका 3

सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं. | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |         |
|--------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|---------|
|        |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1     |
| 1.     | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 40     | 323.5   | 14.00           | 0.27             | नहीं है          | नहीं है |
| 2.     | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 40     | 322.5   | 22.9            |                  |                  |         |

प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों से बेहतर है।

उपरोक्त तालिका 3 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों का मध्यमान 323.5 और प्रामाणिक विचलन का मान 14.00 है जबकि निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान

322.5 तथा प्रामाणिक विचलन का मान 22.9 है। दोनों समूहों के मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.27 ज्ञात हुआ जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

अतः शोधकार्य हेतु पूर्व संरचित शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है, अर्थात् उपरोक्त समूहों की कार्य-संतोष लगभग एक समान है।

तालिका 4

सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष एवं महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं. | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |     |
|--------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|-----|
|        |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1 |
| 1.     | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 40     | 323.5   | 14.00           | 3.01             | है               | है  |
| 2.     | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 40     | 334.5   | 23.30           |                  |                  |     |

तालिका 4 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान का मान क्रमशः 323.5 व 334.75 ज्ञात हुआ। जबकि प्रामाणिक विचलन का मान क्रमशः 14.00 व 23.30 ज्ञात किया गया। दोनों समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 3.01 ज्ञात हुआ है जोकि सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोध कार्य हेतु पूर्व संरचित शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और कहा जा सकता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं की कार्य संतुष्टि में सार्थक अंतर है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान पुरुष अध्यापकों की तुलना में अच्छा है, अर्थात् सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं का अपने व्यवसाय के प्रति संतोष सरकारी प्राथमिक

विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की तुलना में बेहतर है।

तालिका 5 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान का मान क्रमशः 334.75 व 332.5 ज्ञात हुआ। जबकि प्रामाणिक विचलन का मान क्रमशः 23.30 व 22.9 है। दोनों समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 2.90 प्राप्त हुआ जोकि सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोधकार्य हेतु पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और कहा जा सकता है कि सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के कार्य-संतोष में सार्थक अंतर है, अर्थात् सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की तुलना में बेहतर है।

तालिका 5  
सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की  
कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |     |
|-------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|-----|
|       |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1 |
| 1.    | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 60     | 334.75  | 23.30           | 2.90             | है               | है  |
| 2.    | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 60     | 322.5   | 22.9            |                  |                  |     |

तालिका 6  
सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की  
कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं. | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |     |
|--------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|-----|
|        |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1 |
| 1.     | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 60     | 334.75  | 23.30           | 5.57             | है               | है  |
| 2.     | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 40     | 311.5   | 18.3            |                  |                  |     |

तालिका 6 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान का मान 334.75 है, जबकि निजी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों के मध्यमान का मान 311.5 है तथा दोनों समूहों के प्रामाणिक विचलन का मान क्रमशः 23.30 व 18.3 प्राप्त हुआ। मध्यमानों के आधार पर दोनों समूहों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 5.57 ज्ञात हुआ है जोकि सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोध कार्य हेतु पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और कहा जा सकता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं तथा निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि में सार्थक अंतर है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं का मध्यमान निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों के मध्यमानों से अधिक है। इसका कारण सरकारी

प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं का निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना में अधिक वेतनमान, शैक्षिक सुविधाएँ व रोजगार की गारंटी है।

तालिका 7 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि निजी प्राथमिक विद्यालय के महिला एवं पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि मापनी पर दिए गए उत्तरों के प्राप्तांकों के आधार पर मध्यमान, प्रामाणिक विचलन व क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। गणना के आधार पर क्रान्तिक अनुपात का मान 2.66 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोधकार्य हेतु पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और कहा जा सकता है कि निजी प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि में सार्थक अंतर है इस अंतर का प्रमुख कारण महिला अध्यापिकाओं की पारिवारिक परिस्थितयों का बेहतर होना जो कि उनकी कार्य-संतुष्टि को प्रभावित करती है।



तालिका 7  
सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की  
कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

| क. सं. | समूह                     | संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रान्तिक अनुपात | सार्थकता का स्तर |     |
|--------|--------------------------|--------|---------|-----------------|------------------|------------------|-----|
|        |                          |        |         |                 |                  | 0.5              | 0.1 |
| 1.     | सरकारी प्राथमिक विद्यालय | 60     | 332.5   | 22.9            | 2.66             | है               | है  |
| 2.     | निजी प्राथमिक विद्यालय   | 40     | 311.5   | 18.3            |                  |                  |     |

**शोध परिणाम तथा निष्कर्ष**

इस शोध कार्य में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करके निष्कर्ष को प्राप्त किया गया है। अध्ययन के परिणामस्वरूप कई उपयोगी परिणाम तथा निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं इन परिणामों तथा निष्कर्ष को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

(क) कार्य-संतुष्टि के संदर्भ में सरकारी तथा निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की तुलना प्रो. एस.सी. गुप्ता की 'अध्यापक कृत्य-संतोष मापनी' पर प्राप्त अंकों के मध्यमानों के आधार पर की गयी है। तुलना हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान 3.91 प्राप्त हुआ जोकि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का मध्यमान निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना में अधिक है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का स्तर उच्च है।

(ख) सरकारी तथा निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान 2.88 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का कार्य-संतुष्टि मापनी पर मध्यमान अंक निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना में अधिक है इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की तुलना में उच्च है।

(ग) सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों तथा निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.27

प्राप्त हुआ जो सार्थकता के स्तर 0.05 स्तर पर भी सार्थक नहीं है।

यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों तथा निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि मापनी पर मध्यमानों के अंकों के आधार पर कार्य-संतुष्टि पर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

- (घ) सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष एवं महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि का मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 3.01 प्राप्त हुआ जो सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है।

यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि मापनी का मध्यमान का अंक पुरुष अध्यापकों की तुलना में अधिक है इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि महिला अध्यापिकाओं की तुलना में भिन्न है।

- (ङ) सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष एवं महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि का मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान 2.90 प्राप्त हुआ जो सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है।

यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि

मापनी का मध्यमान का अंक पुरुष अध्यापकों की तुलना में अधिक है इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि पुरुष अध्यापकों की तुलना में उच्च है।

- (च) सरकारी तथा निजी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान 5.57 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है। यहाँ पर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापकों का कार्य-संतुष्टि मापनी पर मध्यमान अंक निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की तुलना में अधिक है इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की तुलना में उच्च है।

- (छ) निजी प्राथमिक विद्यालय की महिला एवं पुरुष अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि मापनी पर मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 2.66 प्राप्त हुआ है जो सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है। यहाँ पर निजी प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि मापनी पर मध्यमान का अंक पुरुष अध्यापकों की तुलना में अधिक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि निजी

प्राथमिक विद्यालय की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-संतुष्टि पुरुष अध्यापकों की तुलना में उच्च है।

### शोध कार्य का शैक्षिक महत्व

प्रस्तुत शोध कार्य सरकारी तथा निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि पर आधारित है। इस शोध कार्य के परिणाम इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि तुलनात्मक दृष्टि से अधिकांश परिस्थितियों में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के चाहे पुरुष अध्यापक हों या महिला अध्यापिकाओं उनकी कार्य संतुष्टि निजी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष एवं महिला अध्यापिकाओं की तुलना में बेहतर है। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि सरकारी

प्राथमिक विद्यालयों का वेतनमान निजी प्राथमिक विद्यालयों की तुलना में बेहतर होना, साथ ही सेवाकाल की पूर्ण निश्चितता उनके कार्य संतुष्टि के स्तर को बेहतर बनाती है जबकि निजी प्राथमिक विद्यालयों में भविष्य के प्रति असुरक्षा, वेतनमान में विसंगतियाँ तथा सेवाकाल की अनिश्चितता उनके कार्य-संतुष्टि को कम कर देती है। निजी प्राथमिक विद्यालयों में भी यदि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की भाँति सेवाकाल का स्थायीकरण, भविष्यनिधि की सुविधा तथा वेतनमान की सामानता प्रदान की जाए तो इनके भी कार्य संतोष का स्तर बेहतर हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप वे शिक्षण कार्य में पूरी एकाग्रता तथा लगन एवं निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य सम्पादित करेंगे।

### संदर्भ

1. बुच, एम.बी. 1997. *सैकण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन*, बरोड़ा सोसायटी फॉर एजुकेशन रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधन और प्रशिक्षण परिषद 1991. *थर्ड एण्ड फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन*, नई दिल्ली
2. बेस्ट जॉन, डब्ल्यू. 1982. *रिसर्च इन एजुकेशन*, नई दिल्ली, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया प्रा. लिमि.
3. गुप्ता, एस.पी.: *जॉब सेटिस्फेक्शन एण्ड द टीचर*, शारदा पार्क भवन II, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद
4. शर्मा, ए. के. 1997. *फिफथ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन*, नई दिल्ली, नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशन रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग
5. कपिल, एच. के. 1986. *सांख्यिकी के मूल तत्व*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. गुप्ता, एस.पी. 1996. *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ*, शारदा पुस्तक मंदिर, इलाहाबाद
7. गैरिट, ई. हेनरी 1989. *शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग*, कल्याणी पब्लिशर्स-बी-15, 16 सेक्टर 8 नोएडा, उ.प्र.

# पाठ्यपुस्तकें जीवन की समझ पैदा करती हैं

स्नेहलता प्रसाद\*

---

पाठ्यपुस्तकें बच्चों के लिए उस संसार के द्वार खोलती हैं जो उनकी कोमल भावनाओं को आकार देता है, उनकी नादानियों को समझदारी के धरातल से स्पर्श कराता है। शब्दों में अपनी बात व्यक्त कर पाने में असहजता महसूस कर बालक शब्दों से बोलना, सीखना एवं समझना शुरू करते हैं। पुस्तकें बच्चों को अपने परिवेश की प्राकृतिक, सामाजिक व अन्य परिस्थितियों से मेल कराती हुई अनेक नव अनुभवों से परिचय कराती हैं जो उम्र की सीमाओं में अभिव्यक्त नहीं हो पाते हैं। एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में एक प्रयास हैं। प्रस्तुत लेख यही अभिव्यक्त करता है।

---

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 सुझाती है कि स्कूली शिक्षा मात्र किताबी ज्ञान ही न रह कर विद्यार्थियों को सही अर्थ में ज्ञानवान बनाए जिससे वे बाहर की दुनिया से उस ज्ञान को जोड़ कर देख सकें। किताब प्रदत्त ज्ञान उन्हें सोचने, समझने और परखने की दिशा प्रदान कर सके। वे किताब रटकर मात्र परीक्षा में उसे उलट कर कक्षा उत्तीर्ण कर लेने को ही शिक्षा न समझें। शिक्षा वास्तव में हमें एक दृष्टिकोण देती है जिसके कारण हम अपने आस-पास की वस्तुओं, परिवेश, पर्यावरण, सामाजिक दायित्व, सांस्कृतिक

धरोहर आदि अनेक बातों के प्रति जागरूक बनते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य है कि हम और कुछ बने या न बनें परंतु सही मायनों में एक इंसान अवश्य बने जो मानवीयता की उष्मा से भरपूर हों। आज लोग संवेदनशून्य हो गए हैं। यह उदासीनता या तटस्थता स्वस्थ समाज का चित्र प्रस्तुत नहीं करती। पहले किसी के घर में कोई संकट आ पड़ता था तो सारा गाँव या आस-पड़ोस उसमें शामिल हो जाता था। किसी की बेटी की शादी हो तो पूरा गाँव अथवा आस-पड़ोस

---

\*प्रवाचक ,भाषा विभाग, एनसीईआरटी, नई दिल्ली

अपने-अपने हिसाब से मदद करने को खड़ा हो जाता था।

आज हम की गंध को भूल झूठी चकाचौंध और सिंथेटिक परफ्यूम की ओर भागने लगे हैं।

हाल में ही एन.सी.आर.ई.टी. द्वारा बनाई गई हिंदी विषय की किताबों में इस बात का ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थी स्कूली ज्ञान को अपने जीवन के दिन-प्रतिदिन के अनुभवों से जोड़ सकें। इन किताबों के लिए नए पाठ्यक्रम पर आधारित पाठों को चुनते समय भरपूर चिंतन किया गया कि प्रत्येक पाठ ऐसा हो जिसे विद्यार्थी पढ़कर महसूस करे कि वह जो ज्ञान ले रहा है उसमें उसके अपने अनुभव भी शामिल हैं और वह उन अनुभवों का विश्लेषण कर प्राप्त ज्ञान को और अधिक समृद्ध कर सकता है। उदाहरण के लिए कक्षा नौ की हिंदी 'ब' कोर्स की पाठ्यपुस्तक 'स्पर्श भाग' 1 में दो रचनाएं रखी गई हैं – 'धूल' और 'कीचड़ का काव्य'।

धूल नामक पाठ बताता है कि मानव सहित पेड़, पौधे, जीव-जंतु सभी इसी माटी की उपज हैं। यह माटी संघर्ष में विजयी हुए माटी के सपूतों की ललाट पर गर्व की भांति दमकती भी है। इस माटी को पहचान देती है यह धूल। जैसा पुस्तक में कहा गया है कि धूल की मिट्टी की आभा है यही आभा मिट्टी के रंगरूप को पहचान देती है।

'कीचड़ का काव्य' नामक रचना यह बताती है कि मिट्टी से बना कीचड़ हमें अन्न देता है तो फिर जीवन में जिस मिट्टी, धूल और कीचड़ से हम बचना चाहते हैं, उसे तुच्छ मानते हैं,

उसका हमारे जीवन में कितना महत्व है हमारे युवावस्था की ओर बढ़ते विद्यार्थियों को मिट्टी की ज़मीनी हकीकत का अनुभव कराते ये दोनों पाठ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। परंतु, इन पाठों के प्रति कुछ अध्यापकों ने जो विचार प्रकट किए हैं उसके अनुसार ये पाठ बहुत कठिन हैं तथा कीचड़ का काव्य नामक पाठ नीरस है। उनका कहना था कि विद्यार्थी इन पाठों को पढ़ने में रुचि नहीं लेते।

यहाँ पर यह उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है कि शिक्षकों को यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि विद्यार्थियों के किसी पाठ में रुचि न लेने के कारण क्या हैं? जहाँ तक पाठों के कठिन और नीरस होने का प्रश्न है तो साहित्य के संदर्भ में हम इतना तो समझते हैं कि रचनाकार जब किसी रचना को कलमबद्ध करता है तो वह अपनी पूरी कल्पनाशक्ति लगा देता है। वह अपनी रचना को हमारे सामने रखने के पूर्व जाँचने, परखने, बारीक निरीक्षण करने के साथ, उस पर चिंतन-मनन भी करता है। अतः उसकी रचना, एक रचना प्रक्रिया का उत्पाद होती है।

समाज के विभिन्न पहलुओं को बारीकी से देखते हुए, विश्लेषण करते हुए शब्दों में पिरोना-एक लेखक बखूबी करता है। फिर कोई रचना नीरस या कठिन कैसे हो सकती है? हमारे दृष्टिकोण रचना को नीरस बनाते हैं। विद्यार्थी किसी पाठ में दी हुई विषयवस्तु से स्वयं को संबंधित किए बिना रुचि नहीं ले पाते हैं। यदि शिक्षक किसी पाठ को विद्यार्थियों के सामने इस

प्रकार प्रस्तुत करे कि विद्यार्थियों को महसूस हो कि उक्त विषयवस्तु उनके स्वयं के अनुभवों से जुड़ी हैं तो उन्हें बार-बार पढ़कर रटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। वे अपने सामाजिक परिवेश की घटनाओं, वस्तुओं और लोगों के साथ विषयवस्तु को जोड़कर सीखने की दिशा में समझ का आनंद लेते हुए उत्तरोत्तर प्रगति कर सकेंगे।

आइए हम एक बार फिर 'धूल' नामक पाठ की बात करते हैं। हम सब जानते हैं कि इसी धूल-मिट्टी में खेल हम बड़े हुए। कृष्ण की बाल लीला का वर्णन करते हुए सूरदास कहते हैं—

घुटरुन चलत रेणु तन मंडित  
मुख दधि-लेप किए।

उस दृश्य की कल्पना कीजिए कि रेणु अर्थात् धूल से सने सुशोभित शरीर वाले घुटनों के बल चलते हुए मुँह पर दही लपेटे हुए बाल कृष्ण दही की हंडिया पर हाथ साफ कर चले आ रहे हैं। अब इस दृश्य को देख किसका मन उन्हें गोद में उठा छाती से लगा चूम लेने का न करेगा। सभी को धूल में सने घुटने चलते बच्चों में कृष्ण की यही छवि दिखाई पड़ती है। तभी तो कहा है—

धन्य धन्य वे हैं मैले जो करत गात कनिया  
लगाए धूरि ऐसे लरिकान की।

तो फिर वही धूल जो इतनी आनंदकारी हो उसे विषयवस्तु के रूप में देकर जीवन के अनुभवों से जोड़कर विद्यार्थियों के सामने रखा जाये तो शायद कक्षा जीवंत हो उठेगी। इसे समझने और समझाने के लिए तरह-तरह के

उदाहरण दिए जा सकते हैं जैसे—संध्याबेला में घर लौटती गायों के खुरों से उठती धूल गोधूलि कहलाई और जो सांझ ढले घर के लोगों के काम से लौटने, घर पर व्याप्त दिनभर के सूनेपन को चहल-पहल में बदलने और चूल्हा-चौका की तैयारी का संकेत दे गृहिणी के तन-मन में अपने प्रियजनों—माता-पिता, भाई-बहिन, पति, बच्चों एवं अन्य परिजनों के लिए स्वादिष्ट पौष्टिक आहार बनाने की तत्परता भर देती है। वह धूल अनचाही कैसे हो सकती है जो जीवन में विविध प्रकार के हास-उल्लास भरती है।

कुशती लड़ने वाले अखाड़े की मिट्टी को माथे से लगा धूल में लोट-पोट हो जीवन का आनंद उठाते हैं। हाल ही में समाचारों में चर्चा में आये ब्रिस्टोल विश्वविद्यालय के क्रिसलोरी ने एक शोध में कहा है कि मिट्टी में विद्यमान साधारण जीवाणु लोगों की जैविक क्षमता बढ़ाते हैं। यह पाया गया है कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में जीवाणुओं का अधिक सामना आगे चलकर स्वस्थ विकास तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करने में सहायता करता है। धूल, मिट्टी, वर्षा, पानी, धूप शीत सभी का हमारे जीवन में अहम महत्व है। यहाँ यह बात और अधिक महत्व रखती है कि कक्षा में विषयवस्तु कैसे प्रस्तुत की जाती है।

अब 'कीचड़ का काव्य' शीर्षक से दिए पाठ पर एक दृष्टि डालते हैं। पाठ 'कीचड़ का काव्य' तो अपने में एक काव्य ही समेटे हुए है। बस देखने वाले की पारखी दृष्टि चाहिए। वह कमल कीचड़ में ही खिलता है जिससे मुख की

समता की जाती है। कमल की पंखड़ियों समान नेत्र सौंदर्य का वर्णन किया जाता है। कविवर निराला 'राम की शक्ति पूजा' में कहते हैं कि जब राम की अर्चना में एक कमल कम हो गया तब सहसा उन्हें याद आता है कि माँ मुझको राजीव लोचन कहती थी और वह अपना नेत्र कमल अर्पित करने को तत्पर हो जाते हैं। बिखरा हुआ कीचड़, कीचड़ उछालना, कीचड़-कीचड़ कर देना अच्छा नहीं होता। पर हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। मिट्टी को पानी से सान कर ही कुम्हार पात्र गढ़ता है, मूर्ति बनाता है, खिलौने बनाता है, घरेलू उपयोग के बर्तन बनाता है।

आज खनिज की लोगों को कमी महसूस हो रही है। पहले लोग कुल्हड़ में चाय, पानी आदि पीते थे, मिट्टी की परात में दही जमाई जाती थी, मिट्टी के बरतन में दूध औंटाया जाता था, मिट्टी की हंडिया में भोजन पकता था। अपने आप ही उस धरती की मिट्टी में व्याप्त खनिज मिल जाता था। आज प्लास्टिक, थर्मोकोल के कप, गिलास, प्लेट आदि में लोग चाय, पानी पीते हैं और उसी से बनी प्लेटों (पत्तलों) में खाना खाते हैं। लोगों के जीवन से पानी भीगी मिट्टी की सौंधी गंध ही नहीं उड़ी मनुष्यता की ऊष्मा भी उड़ गई है।

कीचड़ में धान की पौध की रोपायी की जाती है। भारत के पूर्व और पूर्वोत्तर प्रदेश के साथ-साथ पश्चिम बंगाल, पंजाब आदि क्षेत्रों में चावल की खेती की जाती है। भारत की ज्यादातर जनसंख्या का आहार चावल ही है। आज खेती

के लिए भले ही नलकूप से काम चल जाता है पर धान पाने के लिए कीचड़ में तो धंसना ही पड़ेगा। इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता। कीचड़ के रंग में गंदगी छुपाने की भी अद्भुत क्षमता होती है। किताबों पर जिल्द चढ़ाने के लिए प्रयुक्त गत्ता इसी रंग का होता है, बच्चों की किताबों पर भी खाकी रंग का ही कवर चढ़ाया जाता है। देश की रक्षा करने वाले जवान भी इसी रंग के वस्त्र पहन प्रकृति में मिल दुश्मन का मुकाबला कर सकते हैं। कीचड़ के महत्व को समझने वाले अपने डिटर्जेंट के प्रचार हेतु कीचड़ का ही सहारा ले बताते हैं कि 'दाग अच्छे हैं'।

प्रकृति प्रदत्त सभी वस्तुएँ और स्वयं प्रकृति हमारे विकास के लिए अनिवार्य तत्व हैं। जिसे हमारी कक्षाओं में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे न केवल विद्यार्थियों की इसमें रुचि बढ़े वरन् वे स्वयं प्रकृति का अवलोकन कर नई-नई विमाओं की कल्पना कर सकें।

आइए इसी पुस्तक के कुछ और पाठों के बारे में जानते हैं। कक्षा नौ (कोर्स 'ब') की पाठ्यपुस्तक स्पर्श भाग 1 में सम्मिलित पाठ 'दुःख का अधिकार' गरीबों के दुःखों की उन परतों को सामने रखता है जो समाज द्वारा विभाजित दीवारों में छिपी रह जाती हैं। वह जानता है कि संसार में दुःख की विभीषिकाएं किन्हीं सीमाओं के बंधनों में बंधी नहीं रहती हैं परंतु साधन संपन्न की अपेक्षा साधनविहीन पर इसका प्रभाव ज्यादा पड़ता है। दुःख के अनछुए पहलुओं का चित्रण बच्चों के अंतस को गहराई से प्रभावित



कर अधिक संवेदनशील बनने की सीख देता है। इससे बच्चों की सामाजिक परिस्थितियों को समझने की क्षमता बढ़ती है। स्पर्श भाग-1 में ही सम्मिलित पाठ 'वैज्ञानिक चेतना के वाहक चंद्रशेखर वेंकट रामन्' के संदर्भ में भी अध्यापकों का कहना है विज्ञान में आज इतनी अधिक प्रगति हो गई है कि उस के परिदृश्य में यह पाठ समसामयिक नहीं लगता। अतः इसे पढ़ाने की क्या आवश्यकता है?

यहाँ अध्यापक बंधु यह अवश्य ध्यान रखें कि आज विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति कर हम जहाँ पहुँचे हैं, वहाँ हम थॉमस अल्वा एडीसन, जार्ज स्टीफेन्सन, राइट ब्रदर्स, न्यूटन, आइंस्टाइन, आर्कमिडीज और वेंकट रामन् के अन्वेषणों, अनुसंधानों और उनकी गवेषणात्मक जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण ही पहुँचे हैं। इनके अविष्कारों का महत्व ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार बिना नींव के भवन के निर्माण की कल्पना करना भी असंभव है अतः बिना इनकी खोजों को जाने-बूझे विज्ञान के समसामयिक ज्ञान को समझना भी कठिन होगा।

इस पाठ द्वारा एक अनुसंधानकर्ता की गवेषणात्मक प्रवृत्ति के साथ-साथ हमें अपने लक्ष्य प्राप्ति की उत्कंट ललक, लगन और अटूट विश्वास के महत्व को भी समझने का अवसर मिलता है। किसी निश्चित लक्ष्य के प्रति यदि मन में दृढ़ संकल्प हो तो कुछ भी पाना असंभव नहीं है। बस मन में लगन, निष्ठा और अपने पर विश्वास हो तो फिर कोई भी मंजिल क्यों न हो वह हमारी पहुँच से बाहर नहीं रह सकती।

इस पाठ द्वारा हमें यह भी पता चलता है कि महान व्यक्तित्व संपन्न लोग चाहे किसी भी बुलंदी पर क्यों न पहुँच जाएँ, वे अपनी सभ्यता और संस्कृति की गरिमा सदैव बनाए रखते हैं। पाठ वैज्ञानिक जानकारी के साथ-साथ हमें जीवन शैली के प्रति भी सचेत करता है। अतः पाठ को पाठ तक सीमित न रख उसे जीवन से जोड़ना चाहिए। अगर सामर्थ्य हो तो दूसरों की मदद कर उनके विकास का मार्ग भी सर रामन् की तरह प्रशस्त करना चाहिए।

बच्चों के सामाजिक परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले 'रिशतों' का चित्रण करता हुआ बड़े भाई साहब अध्याय कक्षा दस ब की हिंदी पाठ्यपुस्तक 'स्पर्श भाग 2' में है जिसमें छोटे भाई की मनोस्थिति का सुंदर चित्रण किया गया है। उम्र और समझदारी के पैमाने पर छोटे भाई के समक्ष उत्पन्न हो रहा द्वंद बच्चों के मनोभावों से सीधे जा जुड़ता है। बच्चों के समक्ष, पढ़ाई और खेलकूद के मध्य संतुलन का एक अनुकरणीय उदाहरण छोटे भाई की सफलता के रूप प्रस्तुत होता है।

'बड़े भाई साहब' समय प्रबंधन के प्रति सचेत कर दर्शाता है कि जीवन में खेल-कूद और पढ़ाई दोनों के महत्व को समझते हुए अपनी प्राथमिकताओं के अनुसार सभी को समय देना चाहिए। इस बार दसवीं बोर्ड की परीक्षा परिणाम घोषित होने पर 98% अंक प्राप्त करने वाले बाल भवन सीनियर सैकेंडरी स्कूल, दिल्ली के छात्र रोहित गुप्ता ने एक समाचार पत्र 'टाइम्स ऑफ इंडिया' (30.5.07) को बताया कि वह

स्कूल से आकर दोपहर को सोता भी था, शाम को बाहर जाकर खेल-कूद इत्यादि अन्य विभिन्न गतिविधियों में भी हिस्सा लेता था और फिर बाकी समय जमकर पढ़ता था, उसने कोई कोचिंग भी नहीं ली। अतः इससे छात्र जीवन में समय के महत्व को समझ सकता है। साथ ही दिनचर्या निर्धारित करने के सुखद परिणाम को बखूबी समझा जा सकता है।

हमें जीवन में समय बाँधकर काम करना चाहिए। अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करें कि दिन-रात भी अपनी-अपनी समय सीमाओं में बंधे आते-जाते हैं। ऋतुएं भी निर्धारित समय पर अपने अपने क्रम से आती-जाती हैं। घर-बाहर की दिनचर्या भी सुबह, दोपहर, शाम और रात में बंटी रहती है और हम सभी उसी के अनुसार काम करते हैं। अतः छात्रों को समय का पालन भली प्रकार से करना चाहिए।

इस कहानी में शिक्षा पद्धति और परीक्षा प्रणाली पर कड़ा व्यंग्य है। अतः अध्यापकों को शिक्षा और प्रतिष्ठा के प्रति अपना नज़रिया बदल कर एक लचीलेपन को अपनाना चाहिए।

इसी पुस्तक में 'अब कहाँ दूसरों के दुःख से दुःखी होने वाले' नामक पाठ पर्यावरण संतुलन और प्राकृतिक संपदाओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए हमें प्रकृति से छेड़छाड़ कर उसके दुष्परिणामों के प्रति सचेत करता है और विद्यार्थियों को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाते हुए पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु जागरूकता पैदा करने का प्रयास करता है। आखिर कल आने वाली पीढ़ियों को ही अपनी सुरक्षा हेतु वन्य-प्राणियों और प्राकृतिक संपदाओं को भरपूर बनाए रखना है जिससे पर्यावरण असंतुलन के खतरे से बचा जा सके। आज ग्लोबल वार्मिंग के कारण सभी चिंतित हैं। अतः उस खतरे से बचने के लिए बच्चों में पर्यावरण संबंधी सचेतना पैदा करना आवश्यक है।

अध्यापक बंधुओं से आग्रह है कि अब समय बदल गया है। अतः पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित पाठों को परीक्षा के नज़रिए से न पढ़ा कर उसे इस प्रकार पढ़ाएं कि छात्र अपने परिवेश को समझ सकें। उसे इस बात का अहसास कराना चाहिए कि संसार में कुछ भी तुच्छ एवं महत्वहीन नहीं है। बस उसे देखने के लिए दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना जरूरी है।

# ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध शिक्षा सुविधाएँ

मंजू त्रेहन\*

संदीप कुमार शर्मा\*\*

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारे देश में शिक्षा की सुविधाएँ बहुत ही सीमित थीं। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा सुविधाओं को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए अनेकानेक योजनाएँ बनाई गईं व कार्यक्रम चलाए गए जिनके परिणामस्वरूप शैक्षिक सुविधाओं में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। शैक्षिक सुविधाओं व शिक्षा के स्तर का जायजा लेने के लिए समय-समय पर विभिन्न संस्थानों द्वारा सर्वेक्षण किए जाते रहे हैं। एनसीईआरटी द्वारा भी अब तक सात अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण किए जा चुके हैं। प्रस्तुत लेख एनसीईआरटी द्वारा किए गए सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण के आंकड़ों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर शिक्षा सुविधाओं की स्थिति का विश्लेषणात्मक ब्यौरा प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत जानकारी का उपयोग ज़मीनी स्तर पर विद्यालयी शिक्षा की योजना बनाने में किया जा सकता है।

किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में शिक्षा का अद्वितीय योगदान होता है। इसलिए राष्ट्रीय विकास एवं सामाजिक पुनर्निर्माण की गति में तीव्रता लाने के लिए राष्ट्रीय स्तर से लेकर ग्राम्य स्तर तक शैक्षिक नियोजन और उसका निष्ठापूर्वक क्रियावयन एक अनिवार्य आवश्यकता समझी जाती है।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात, 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने हेतु संविधान के

अनुच्छेद 45 में प्रतिस्थापित राष्ट्रीय वचनबद्धता को पूर्ण करने को उच्च प्राथमिकता दी गई। इस दिशा में नियोजित प्रयासों हेतु कुछ बुनियादी आगतों (इनपुट) जैसे-विद्यालयरहित बस्तियों, उनकी जनसंख्या और उपलब्ध विद्यालय सुविधा की दूरी का पता लगाने की आवश्यकता थी। जिससे विद्यालयरहित बस्तियों में विद्यालयों की स्थापना की जा सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा (यू.ई.ई.) को पुनः परिभाषित

\*प्रोफेसर, शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

\*\*रिसर्च एसोसिएट, शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

किया है। इसमें ऐसी शिक्षा पद्धति को तैयार करने का सुझाव दिया गया है जहाँ जाति, पंथ, क्षेत्र और लिंग का भेदभाव किए बिना सभी विद्यार्थियों को एक समान गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध हो। केंद्र और राज्य सरकारों ने शिक्षा के क्षेत्र में कई कदम उठाए हैं, जैसे-सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य वर्ष 2007 तक तथा सर्वव्यापी उच्च प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य वर्ष 2010 तक प्राप्त करने जैसे मुख्य विषय शामिल हैं।

प्रभावी नियोजन एवं उसे व्यवहारिक बनाने के लिए तत्संबंधी क्षेत्र के आधारभूत विश्वसनीय एवं वैध आँकड़ों की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के शुभारम्भ के पूर्व अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण कराए गए। वर्ष 1957 में प्रथम अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (ए.आई.ई.एस.), केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा कराया गया। इसके बाद राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) द्वारा सन् 1965, 1973, 1978, 1986, 1993 और 2002 में छः और अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण किए गए।

प्रस्तावित सर्वेक्षण अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण शृंखला में सातवां है। इसके कार्यक्षेत्र को विशिष्ट रूप से दर्शाने के लिए इस सर्वेक्षण को सातवां अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण (ए.आई.एस.ई.एस) का नाम दिया गया है। इसकी संदर्भ तिथि 30 सितम्बर 2002 है। इस सर्वेक्षण में उपयोगी आँकड़े हैं जिनमें विद्यालयी सुविधाओं की उपलब्धता, मान्यता प्राप्त विद्यालयों

(ई.जी.एस. विद्यालयों को छोड़कर) की संख्या, इनमें नामांकन और शिक्षक, छात्र-अध्यापक अनुपात और विद्यालय भवन की गुणवत्ता जैसे मापकों को लिया गया है। सर्वेक्षण के ग्रामीण सूचना प्रपत्र (वी.आई.एफ) का मुख्य उद्देश्य विभिन्न जनसंख्या समूहों की बस्तियों (अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति सहित) में प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों की विद्यालयी शिक्षा सुविधा की जानकारी प्राप्त करना है। यह सर्वेक्षण यह भी बताता है कि अगर यह सुविधा बस्ती में उपलब्ध नहीं है तो कितनी दूरी पर उपलब्ध है शैक्षिक योजनाकारों और प्रशासकों के लिए प्रकाशित रिपोर्ट के साथ-साथ सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए सर्वेक्षण के आंकड़े जिला और ब्लाक स्तरों तक सी.डी. में भी उपलब्ध कराए गए हैं। सर्वेक्षण आँकड़े <http://7survey.ncert.nic.in> वेबसाइट पर भी उपलब्ध हैं।

### पारिभाषिक शब्दों की अवधारणाएं

सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण में ग्रामीण क्षेत्र के संदर्भ प्रयोग किए गए पारिभाषिक शब्दों की अवधारणाएं निम्न हैं—

**1. समुदायिक विकास खण्ड (सी.डी. ब्लाक)**—समुदायिक विकास खण्ड से अभिप्राय 'समुदाय परियोजना प्रशासन के अंतर्गत ब्लाक' से है। इस सर्वेक्षण में सी.डी. ब्लाक (शैक्षिक नहीं) क्षेत्रीय कार्य करने और आँकड़ों के सारणीयन

के लिए निम्नतम प्रशासनिक और योजना एकक है। जिन राज्यों में समुदाय विकास ब्लॉक का प्रचलन नहीं है, वहाँ इस सर्वेक्षण के लिए जिले का प्रशासनिक उप-प्रभाग जैसे तहसील/तालुक/मण्डल या इसके समकक्ष एकक होगा।

**2. ग्राम :** ग्राम से अभिप्राय राजस्व ग्राम से है, जिसकी निश्चित सर्वेक्षित सीमाएं हैं। राजस्व ग्राम में अनेक हेमलेट हो सकते हैं परंतु आँकड़ों के प्रस्तुतीकरण हेतु सम्पूर्ण ग्राम को एक एकक माना जाएगा। सर्वेक्षण रहित क्षेत्रों जैसे वन क्षेत्र के भीतर बस्तियाँ, प्रत्येक वन क्षेत्र अधिकारी के अंतर्गत स्थानीय मान्यताप्राप्त सीमाओं वाले प्रत्येक आवासीय क्षेत्र को एक पृथक ग्राम के रूप में माना जाएगा। जनसंख्यारहित ग्राम को 'बेचिराग' या 'उजाड़' या 'निर्जन' के रूप में माना जाएगा।

### 3. ग्रामीण बस्ती

(क) बस्ती मकानों का एक ऐसा सुस्पष्ट (Distinct) समूह है जो एक साथ सटे हुए बसे हैं तथा जिसका अपना एक स्थानीय नाम हो, और इसकी जनसंख्या मैदानी क्षेत्रों में 25 से कम न हो तथा पहाड़ी/रेगिस्तानी/छुटपुट बसे हुए क्षेत्रों में 10 से कम न हो। यदि किसी ग्राम में इस प्रकार के मकानों के समूहों की संख्या एक से अधिक है तो उन्हें तब तक पृथक बस्ती नहीं माना जाएगा जब तक कि उनके बीच की सुविधाजनक तरीके से तय की जाने वाली दूरी 200 मीटर से

अधिक न हो।

- (ख) यदि मैदानी क्षेत्र में किसी बस्ती की जनसंख्या 25 से कम तथा पहाड़ी/ रेगिस्तानी/छुटपुट बसे क्षेत्र की जनसंख्या 10 से कम है, तो ऐसी बस्ती को पृथक स्वतंत्र बस्ती का दर्जा न दिया जाए अपितु ऐसी बस्ती की आबादी को उसी ग्राम की पास वाली बस्ती में शामिल किया जाए। लेकिन यदि किसी ग्राम में केवल एक ही बस्ती है तो उसके लिए यह शर्त लागू नहीं होगी।
- (ग) एक ग्राम में एक से अधिक बस्तियाँ हो सकती हैं जब तक कि वह 'उजाड़' या 'बेचिराग' न हो।

### 4. ग्रामीण बस्ती से विद्यालय की दूरी-

बस्ती तथा विद्यालय के बीच की दूरी जो विद्यालय तथा बस्ती के मध्य बिन्दु के बीच सुविधाजनक तरीके से तय की जा सके। दूरी को किलोमीटर में दशमलव के एक स्थान तक दिखाया जाए।

### जनसंख्या

भारत में प्रथम जनगणना 1872 में आयोजित की गई थी लेकिन इसमें इतनी अधिक त्रुटियाँ थी कि 1881 की जनगणना ही भारत की प्रथम जनगणना मानी जाती है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 102.9 करोड़ है। ग्रामीण क्षेत्र में 74.2 करोड़ तथा नगर क्षेत्र में 28.6 करोड़ लोग निवास करते हैं, जो कुल जनसंख्या का क्रमशः 72.18 तथा

27.82% हैं। ग्रामीण क्षेत्र में पुरुष और महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः 51.39 तथा 48.61 है जबकि नगर क्षेत्र में यह प्रतिशत क्रमशः 52.62 तथा 47.38 है।

**तालिका 1 : भारत की जनसंख्या-2001**

| क्षेत्रवार      | पुरुष<br>(प्रतिशत) | महिला<br>(प्रतिशत) | व्यक्ति<br>(करोड़ में) |
|-----------------|--------------------|--------------------|------------------------|
| ग्रामीण क्षेत्र | 51.39              | 48.61              | 74.2                   |
| नगर क्षेत्र     | 52.62              | 47.38              | 28.6                   |
| <b>कुल</b>      | <b>51.74</b>       | <b>48.26</b>       | <b>102.9</b>           |

**(क) भारत में अनुसूचित जाति की जनसंख्या:** तालिका 2 के अनुसार, भारत की जनसंख्या में 16.66 करोड़ अनुसूचित जाति के व्यक्ति हैं, जो कुल जनसंख्या का 16.20% है (जनगणना : 2001)। ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति के 17.91% व्यक्ति तथा नगर क्षेत्र में 11.75% व्यक्ति निवास करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में पुरुष और महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः 51.58 तथा 48.42 है, जबकि नगर क्षेत्र में यह क्रमशः 52 व 48% है।

**तालिका 2 : भारत में अनुसूचित जाति की जनसंख्या (2001 जनगणना)**

| क्षेत्रवार      | पुरुष<br>(प्रतिशत) | महिला<br>(प्रतिशत) | व्यक्ति<br>(करोड़ में) |
|-----------------|--------------------|--------------------|------------------------|
| ग्रामीण क्षेत्र | 51.58              | 48.42              | 13.30                  |
| नगर क्षेत्र     | 52.00              | 48.00              | 3.36                   |
| <b>कुल</b>      | <b>51.66</b>       | <b>48.34</b>       | <b>16.66</b>           |

**(ख) अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या :** 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 8.20% अनुसूचित जनजाति का है अर्थात् अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 8.43 करोड़ है। ग्रामीण तथा नगर क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति की कुल जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 10.42 तथा 2.44 है। ग्रामीण क्षेत्र में पुरुष और महिला का प्रतिशत क्रमशः 50.49 तथा 49.51 है जबकि नगर क्षेत्र में यह प्रतिशत क्रमशः 51.45 व 48.55 है।

**तालिका 3 भारत में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या (2001 जनगणना)**

| क्षेत्रवार      | पुरुष<br>(प्रतिशत) | महिला<br>(प्रतिशत) | व्यक्ति<br>(करोड़ में) |
|-----------------|--------------------|--------------------|------------------------|
| ग्रामीण क्षेत्र | 50.49              | 49.51              | 7.73                   |
| नगर क्षेत्र     | 51.45              | 48.55              | 0.70                   |
| <b>कुल</b>      | <b>50.57</b>       | <b>49.43</b>       | <b>8.43</b>            |

**ग्रामीण क्षेत्र की बस्तियाँ और उनकी जनसंख्या :** सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण के अनुसार सितम्बर 30, 2002 तक की अनुमानित जनसंख्या 108.9 करोड़ है इसमें ग्रामीण तथा नगर क्षेत्रों की जनसंख्या क्रमशः 77.72 करोड़ (71.35%) तथा 31.21 करोड़ (28.65%) है।

सर्वेक्षण के अनुसार सामुदायिक विकास खण्ड की संख्या 6,374 है तथा तहसील तालुक की संख्या 5291 है। ग्रामीण क्षेत्र में 6,36,715 ग्राम है जिनमें से 5,86,986 आबाद ग्राम हैं।

ग्रामों में कुल 12,09,521 बस्तियाँ हैं। इस प्रकार प्रति ग्राम औसत बस्तियों की संख्या 2.06 है। शैक्षिक सर्वेक्षण 1993 के समय कुल आबाद ग्रामों एवं बस्तियों की संख्या क्रमशः 5,86,465 तथा 10,60,612 थी।

तालिका 4 : बस्तियों की संख्या

| क्षेत्रवार                        | सातवां सर्वेक्षण | छठा सर्वेक्षण | वृद्धि (प्रतिशत) |
|-----------------------------------|------------------|---------------|------------------|
| आबाद ग्राम                        | 586986           | 586465        | 0.09             |
| बस्तियाँ                          | 1209521          | 1060612       | 14.04            |
| *बेचिराग या उजाड़ या निर्जन ग्राम | 49729            | 47105         | 5.57             |
| प्रतिग्राम औसत बस्तियाँ           | 2.06             | 1.81          |                  |

\*जनसंख्या रहित ग्राम को बेचिराग या उजाड़ या निर्जन ग्राम कहते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्न दूरियों पर उपलब्ध शिक्षा की सुविधाएँ

तालिका 5 : प्राथमिक विद्यालय से सेवित बस्तियाँ एवं उनकी जनसंख्या

|                 | बस्तियाँ (प्रतिशत में) |             | जनसंख्या (प्रतिशत में) |             |
|-----------------|------------------------|-------------|------------------------|-------------|
|                 | बस्ती के भीतर          | 1 कि.मी. तक | बस्ती के भीतर          | 1 कि.मी. तक |
| सभी             | 51.55                  | 85.63       | 78.17                  | 94.17       |
| अनुसूचित जाति   | 42.50                  | 86.07       | 68.05                  | 92.84       |
| अनुसूचित जनजाति | 47.13                  | 79.27       | 69.84                  | 89.01       |

(1) प्राथमिक शिक्षा सुविधाएँ : सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण (सितम्बर 30,2002) से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर प्राथमिक शिक्षा से सेवित बस्तियों एवं उनसे सेवित जनसंख्या को दूरी के अनुसार तालिका 5 में प्रस्तुत किया गया है।

बस्ती के अंदर : उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण अंचल की 1209521 बस्तियों में से 623498 (51.55%) ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ प्राथमिक स्तर की शिक्षा बस्ती में ही उपलब्ध है। इन बस्तियों की संख्या 607586311 है जो कुल जनसंख्या का 78.17% है। इसी प्रकार अनुसूचित जाति की 174700 बस्तियों में 74244 (42.50%) ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ प्राथमिक स्तर की शिक्षा बस्ती में ही उपलब्ध है। इन बस्तियों की जनसंख्या 64068787 है जो कुल जनसंख्या का 68.05% है। अनुसूचित जनजाति की 242993 बस्तियों में से 114527 (47.13%) ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ प्राथमिक स्तर की शिक्षा बस्ती में ही उपलब्ध है। इन बस्तियों की जनसंख्या 58132362 है जो कुल जनसंख्या का 69.84% है।



**एक किलोमीटर तक :** एक प्राथमिक स्तर के लिए बालक से विद्यालय जाने के लिए 1 कि.मी. से अधिक की दूरी तय करना कठिन है इसलिए अगर विद्यालय घर से 1 किलोमीटर की दूरी के भीतर उपलब्ध है तो वह बस्ती सेवित मानी जाती है।

तालिका 5 से स्पष्ट है कि बस्तियों में एक किलोमीटर दूरी के भीतर प्राइमरी शिक्षा से सेवित बस्तियों की संख्या 1035764 (85.63%) है तथा इन बस्तियों की जनसंख्या 731935753 है जो कुल जनसंख्या का 94.17% है। अनुसूचित जाति की 150367 (86.07%) ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ प्राथमिक स्तर की शिक्षा बस्तियों में एक कि.मी. दूरी के भीतर सेवित है तथा इन बस्तियों की जनसंख्या 87408680 है जो कुल जनसंख्या का 92.84% है। इसी प्रकार अनुसूचित जनजाति में यह सुविधा 192624 (79.24%) बस्तियों में उपलब्ध है जहाँ की जनसंख्या 74094740 है जो कुल जनसंख्या का 89.01% है।

उपयुक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति की 47% बस्तियों में प्राथमिक शिक्षा बस्ती के भीतर ही उपलब्ध है जबकि

अनुसूचित जाति की 43% बस्तियों में यह सुविधा है। 52% कुल ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ बस्ती के अंदर ही प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है। एक किलोमीटर के भीतर 86% कुल बस्तियाँ, 86% अनुसूचित जाति तथा 79% अनुसूचित जनजाति की बस्तियों में यह सुविधा उपलब्ध है तथा इससे लाभान्वित जनसंख्या 94% कुल जनसंख्या, 93% अनुसूचित जाति तथा 89% अनुसूचित जनजाति की है।

**(2) उच्च प्राथमिक शिक्षा सुविधाएं :** सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से, दूरी के आधार पर उच्च प्राथमिक शिक्षा से सेवित बस्तियों एवं जनसंख्या संबंधी जानकारी निम्न सारणी में प्रस्तुत की गई हैं।

**बस्ती के अंदर :** सातवें सर्वेक्षण के अनुसार 1209521 बस्तियाँ हैं इन बस्तियों में से 204199 बस्तियाँ ऐसी हैं जिनमें अपनी बस्ती में ही उच्च प्राथमिक स्तर तक की सुविधा उपलब्ध है जो कुल बस्तियों का 16.88% है। इन सेवित बस्तियों की 324675177 जनसंख्या इस सुविधा से लाभ उठा रही है जो ग्रामीण क्षेत्र

**तालिका 6 : उच्च प्राथमिक विद्यालय से सेवित बस्तियाँ एवं उनकी जनसंख्या**

|                 | बस्तियाँ (प्रतिशत में) |             | जनसंख्या (प्रतिशत में) |             |
|-----------------|------------------------|-------------|------------------------|-------------|
|                 | बस्ती के भीतर          | 3 कि.मी. तक | बस्ती के भीतर          | 3 कि.मी. तक |
| सभी             | 16.88                  | 80.91       | 41.77                  | 88.72       |
| अनुसूचित जाति   | 11.60                  | 81.83       | 24.21                  | 86.27       |
| अनुसूचित जनजाति | 10.76                  | 67.21       | 26.76                  | 76.58       |

की कुल जनसंख्या का 41.77% है। इसी प्रकार अनुसूचित जाति की 174700 बस्तियों में से 16581 (11.60%) बस्तियाँ ऐसी हैं जिनमें बस्ती में ही उच्च प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है तथा कुल जनसंख्या का 24.21% है। सर्वे के अनुसार अनुसूचित जनजाति की 242993 बस्तियों में से 26150 (10.76%) बस्तियाँ ऐसी हैं जिनमें बस्ती में ही उच्च प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है तथा जो कुल जनसंख्या का 26.76% है।

तालिका 6 से स्पष्ट है कि बस्ती के भीतर उच्च प्राथमिक सुविधा का लाभ 16.88% सभी जाति की बस्तियाँ, अनुसूचित जाति की 11.6% तथा 10.8% अनुसूचित जनजाति की बस्तियाँ उठा रहीं हैं जिनकी जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 41.77, 24.21 तथा 26.76 है।

**तीन किलोमीटर तक :** तालिका 6 से स्पष्ट है कि बस्तियों में तीन किलोमीटर दूरी के भीतर उच्च प्राथमिक शिक्षा से सेवित 978580 (80.91%) बस्तियाँ हैं। इन बस्तियों की जनसंख्या

689563203 है जो कुल जनसंख्या का 88.72% है। अनुसूचित जाति की 142590 (81.83%) ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ यह शिक्षा सुविधा उपलब्ध है, इन बस्तियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 86.27% है। तीन किलोमीटर तक उच्च प्राथमिक शिक्षा की सुविधा की अनुसूचित जनजाति की 163308 (67.21%) बस्तियाँ हैं। इन बस्तियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 76.58% है।

**(3) माध्यमिक शिक्षा सुविधा :** माध्यमिक शिक्षा से अभिप्राय हाईस्कूल स्तर की शिक्षा से है।

**बस्ती के अंदर :** भारत में कुल बस्तियों में से 69991 (5.79%) ऐसी बस्तियाँ हैं, जिन्हें अपनी ही बस्ती में माध्यमिक स्तर की शिक्षा सुविधा सुलभ है। जनसंख्यानुसार इस जनसंख्या वर्ग की 20.55% जनसंख्या इस सुविधा का लाभ उठा रही है। अनुसूचित जाति की 174700 बस्तियों में 5613 (3.21%) ऐसी बस्तियाँ हैं जबकि अनुसूचित जनजाति की 242993 बस्तियों में से 6660 (2.74%) बस्तियों में माध्यमिक शिक्षा

तालिका 7 : माध्यमिक विद्यालय से सेवित बस्तियाँ एवं उनकी जनसंख्या

|                 | बस्तियाँ (प्रतिशत में) |             | जनसंख्या (प्रतिशत में) |             |
|-----------------|------------------------|-------------|------------------------|-------------|
|                 | बस्ती के भीतर          | 5 कि.मी. तक | बस्ती के भीतर          | 5 कि.मी. तक |
| सभी             | 5.79                   | 73.18       | 20.55                  | 80.43       |
| अनुसूचित जाति   | 3.21                   | 76.60       | 9.95                   | 80.22       |
| अनुसूचित जनजाति | 2.74                   | 57.87       | 9.15                   | 65.23       |

सुविधा बस्ती में ही उपलब्ध है। इन बस्तियों की अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की लाभान्वित जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 9.95 और 9.15 है।

**पाँच किलोमीटर तक :** 5 किलोमीटर की दूरी तक माध्यमिक शिक्षा सुविधा सुलभ कुल बस्तियों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की बस्तियों का इस सुविधा से लाभान्वित प्रतिशत क्रमशः 73.18, 76.60 तथा 57.87 है। इसी क्रम में लाभान्वित जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 80.43, 80.22 व 65.23 है। उपयुक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति की बस्तियों का 5 किमी. दूरी के भीतर माध्यमिक शिक्षा की सुविधा अनुसूचित जाति की अपेक्षा कम बस्तियाँ ही इस सुविधा का लाभ उठा रही हैं।

**(4) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा सुविधा :** उच्चतर माध्यमिक शिक्षा से अभिप्राय इण्टरमीडिएट (+2) स्तर की शिक्षा से है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालकों के लिए विद्यालय जाने के लिए आठ किलोमीटर तक की दूरी सामान्य दूरी मानी जाती है।

**बस्ती के अंदर :** सेवित बस्तियों में से 20098 बस्तियाँ ऐसी हैं जिनमें उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा सुविधा अपनी ही बस्ती में उपलब्ध है, जो सम्पूर्ण बस्तियों का 1.66% है। यह सुविधा 1.01% अनुसूचित जाति और 0.56% अनुसूचित जनजाति की बस्तियों में उपलब्ध है। इस सुविधा से लाभान्वित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 3.95 व 2.71 है।

**आठ किलोमीटर तक :** शैक्षिक सर्वेक्षण के मानक के अनुसार 8 किमी. की परिधि तक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से शिक्षा से लाभान्वित बस्तियाँ 754041 हैं जो कुल बस्तियों का 62.34% है। इन बस्तियों की जनसंख्या 532448941 है जो कुल जनसंख्या का 68.51% है। अनुसूचित जाति की 122527 (70.14%) बस्तियाँ हैं जिनकी जनसंख्या 70111027 (74.47%) हैं जो 8 किमी. की परिधि उच्चतर माध्यमिक शिक्षा सुविधा से लाभान्वित हो रही है। इसके विपरीत अनुसूचित जनजाति की केवल 44.25% बस्तियाँ ही इस सुविधा का लाभ उठा

तालिका 8 : उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सेवित बस्तियाँ व उनकी जनसंख्या

|                 | बस्तियाँ (प्रतिशत में) |             | जनसंख्या (प्रतिशत में) |             |
|-----------------|------------------------|-------------|------------------------|-------------|
|                 | बस्ती के भीतर          | 8 कि.मी. तक | बस्ती के भीतर          | 8 कि.मी. तक |
| सभी             | 1.66                   | 62.34       | 8.30                   | 68.51       |
| अनुसूचित जाति   | 1.01                   | 70.14       | 3.95                   | 74.47       |
| अनुसूचित जनजाति | 0.56                   | 44.25       | 2.71                   | 50.70       |

रही हैं जिनकी जनसंख्या 42201000 है जो कुल जनसंख्या का 50.7% है।

### निष्कर्ष

भारत सरकार की सर्वशिक्षा अभियान व अन्य योजनाएँ सभी बच्चों को शिक्षा उपलब्ध कराने के प्रयास में है। इसी संदर्भ में सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण द्वारा प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से सेवित बस्तियों तथा दूरी के आधार पर उनकी उपलब्धता की जानकारी इस लेख के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है साथ ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति बहुल बस्तियों के संदर्भ में शिक्षा सुविधाओं की जानकारी व विश्लेषण दिया गया है जिससे प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर जहाँ आवश्यकता हो वहाँ पर नए विद्यालय खोले जाने की योजना बनाई जा सके। साथ ही विद्यालयों के निर्माण के स्थान का निर्धारण किया जा सके। अधिक से अधिक जनसंख्या की शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति कम से कम अतिरिक्त व्यय में उपलब्ध कराने के प्रयास इन आंकड़ों के आधार पर किए जा सकते हैं।

उपयुक्त आंकड़ों के अनुसार 173757 (14.37%) बस्तियों के प्राथमिक विद्यालय 1 किलोमीटर के अंदर उपलब्ध नहीं है। इन बस्तियों

में से 78414 में वैकल्पिक विद्यालय उपलब्ध है जब कि शेष बची बस्तियों में किसी भी प्रकार की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध नहीं है।

भारत सरकार की योजना अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में नए प्राथमिक विद्यालय तभी खोले जा सकते हैं जब उस बस्ती की जनसंख्या 300 से अधिक हो और वहाँ 1 किलोमीटर के भीतर विद्यालय उपलब्ध न हो। उच्च प्राथमिक विद्यालय के लिए जनसंख्या 1500 से अधिक व माध्यमिक विद्यालय के लिए जनसंख्या 5000 से अधिक हो। इसलिए नए प्राथमिक विद्यालय खोलते समय यह विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि विद्यालय असेवित बस्ती में ही खोला जाए जिसकी जनसंख्या 300 से कम न हो और बस्ती से एक किलोमीटर की दूरी तक कोई प्राथमिक विद्यालय न हो या कुछ बस्तियों के समूह के लिए एक विद्यालय खोला जाए जिन बस्तियों की सम्मिलित जनसंख्या 300 से कम न हो।

इन बस्तियों का अध्ययन करने के पश्चात योजना बनाई जा सकती है कि कहाँ विद्यालय खोले जा सकते हैं और अगर विद्यालय नहीं उपलब्ध कराए जा सकते तो क्या वैकल्पिक शिक्षा उपलब्ध कराई जाने पर विचार किया जा सकता है। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक विद्यालय उन असेवित बस्तियों में खोले जाने चाहिए जहाँ की जनसंख्या 1500 से अधिक हो या बस्तियों के एक समूह के लिए खोले जाने चाहिए जिनकी सम्मिलित जनसंख्या 1500 से अधिक हो।

### संदर्भ

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2007. *सप्तम अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण : राष्ट्रीय आख्या*, शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2002. *सप्तम अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण : सर्वेक्षण अधिकारियों के लिए मार्गदर्शन*, शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग, नई दिल्ली
3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2005. *सप्तम अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण : अन्तरिम सांख्यिकी*, शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग, नई दिल्ली
4. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 1998. *छटा अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण*, शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग, नई दिल्ली
5. भारतीय जनगणना 2001. *भारत सरकार*, नई दिल्ली

## उच्च शिक्षा में स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थानों की व्यवहारिक उपादेयता

अशोक कुमार दुबे\*

किसी भी देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में उच्च शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। हमारी बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए सभी इच्छुक व्यक्तियों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना केंद्र तथा राज्य सरकारों के लिए संभव नहीं है। अतः पिछले कुछ वर्षों से उच्च शिक्षा की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थानों की अवधारणा का जन्म हुआ। आज उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्व-वित्तपोषित निजी शिक्षण संस्थाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। ऐसी कुछ शिक्षण संस्थाएँ गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने में अपना योगदान दे रहीं हैं। परंतु कुछ स्व-वित्तपोषित संस्थाएँ मापदंड और मानकों के अनुरूप काम नहीं कर रहीं हैं। प्रस्तुत लेख में स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता कार्यप्रणाली तथा उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली सुधारने के लिए सुझाव भी दिये गए हैं।

किसी भी देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में उच्च शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सामान्य तथा तकनीकी/व्यवसायिक उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षण संस्थाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है परंतु देश की बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले यह बढ़ोत्तरी पर्याप्त नहीं है। सरकार सभी इच्छुक व्यक्तियों को उच्च शिक्षा उपलब्ध कराने में असमर्थ रही है। सभी इच्छुक व्यक्तियों को गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने हेतु स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थाओं की संकल्पना की गई। आज बहुत-सी स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थायें कार्यरत हैं और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उनकी भूमिका-नकारा नहीं जा सकता। स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थाएँ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कैसा कार्य कर रहीं हैं? उनकी क्या समस्याएँ हैं? उनके द्वारा क्या समस्याएँ पैदा हो रहीं हैं? तथा उनकी कार्यप्रणाली में कैसे सुधार किया जा

\*बी.एड. विभाग, आर. बी. डिग्री कॉलेज, कालिंदी विहार,, नराइच, आगरा 06

सकता है? इन्हीं मुद्दों पर चर्चा की गई है इस लेख में।

शिक्षा वास्तविक अर्थों में सत्य की खोज है, यह ज्ञान और प्रकाश की अंतहीन यात्रा है। ऐसी यात्रा मानवतावाद के विकास के लिए ऐसे नए रास्ते खोलती है, जहाँ ईर्ष्या, घृणा, शत्रुता संकीर्णता और वैमनस्य का कोई स्थान न हो। यह मनुष्य को संपूर्ण, श्रेष्ठ, नेक इंसान और विश्व के लिए एक उपयोगी व्यक्ति बनाती है। सही मायनों में विश्व बंधुत्व ऐसी शिक्षा के लिए ढाल बन जाता है। यथार्थपरक शिक्षा मनुष्य की गरिमा और आत्मसम्मान बढ़ाती है। यदि शिक्षा की यथार्थता को प्रत्येक व्यक्ति समझ ले और मानवीय गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में उसे अपना ले तो रहने के लिए विश्व और बेहतर स्थान बन जायेगा।

स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ने 1948 में एक शिक्षा सम्मेलन में कहा था कि बुनियादी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि उसके बगैर वह बतौर नागरिक, जिम्मेदारियाँ बखूबी नहीं निभा सकता।

भारतीय अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में सबसे बड़ी समस्या जनसंख्या विस्फोट की है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या एवं सरकार की खस्ताहाल आर्थिक स्थिति के मद्देनजर वैज्ञानिक, तकनीकी, औद्योगिक विकास तथा विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियों को सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए आवश्यक उच्च शिक्षित एवं दक्ष मानव संसाधन की उपलब्धता हेतु

प्राप्त मात्रा में सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था कर पाना सरकार के लिए संभव नहीं हो पा रहा है। सभी इच्छुक व्यक्तियों को शिक्षण सुविधा उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने जन सहयोग से शिक्षण संस्थाओं के संचालन की व्यवस्था प्रारंभ की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् निर्मित भारतीय संविधान में शिक्षा प्रांतीय सूची में थी। जिसकी वजह से शिक्षा की व्यवस्था करने का दायित्व प्रांतीय सरकारों का ही था। अब शिक्षा केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व है। वर्तमान स्थिति यह है कि केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर भी मांग के अनुसार आवश्यक सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थान उपलब्ध कराने में असमर्थ रहीं हैं। पिछले कुछ वर्षों से सरकार उच्च शिक्षा को स्व-वित्तपोषित योजना के अंतर्गत व्यवस्थित करने का प्रयास कर रही है। इसके तहत स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा हेतु मान्यता प्रदान की जा रही है तथा सरकारी अनुदानित संस्थाओं में स्व-वित्तपोषित पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

उच्च शिक्षण संस्थाओं के सफल संचालन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है। सरकार की खराब आर्थिक स्थिति के कारण उच्च शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक मदद उपलब्ध कराना सरकार के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। इसलिए निजी शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देना बंद कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप स्व-वित्तपोषित

शिक्षण संस्थान की अवधारणा प्रकाश में आयी। स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की संस्तुति करने तथा बढ़ावा देने के पीछे विभिन्न समितियों की रिपोर्ट तथा शिक्षा खर्च में होने वाली बढ़ोत्तरी प्रमुख कारण रहे हैं। पुनैया समिति (1992) ने उच्च शिक्षा के स्व-वित्तपोषण पर अपना विचार प्रकट करते हुए कहा कि कोई भी गरीब और गैर बराबरी से जूझ रहा हो वह विश्वविद्यालय में हो रही फिजूल खर्ची के अनुदान का समर्थन नहीं कर सकता अथवा संपन्न वर्ग को उच्च शिक्षा पर हो रहे खर्च से बचने की अनुमति नहीं दे सकता। इसलिए उच्च शिक्षा पर हो खर्च का हिस्सा उनसे लिया जाना चाहिए। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 24 अप्रैल 2000 को गठित समिति 'ए पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफार्म इन एजुकेशन' ने उच्च शिक्षा हेतु निजी सहयोग लेने पर जोर दिया था। अंबानी बिड़ला समिति ने भी शिक्षा को बाजारोन्मुखी बनाने पर जोर दिया था।

उच्च शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में निजी शिक्षण संस्थाओं/स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की भूमिका को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है। कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ शिक्षा की गुणवत्ता के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिप्राप्त हैं। वहाँ से उत्तीर्ण छात्रों के लिए रोज़गार प्राप्ति की संभावनाएँ अधिक होती हैं। उनका प्रबंधन व्यवस्थित होता है, छात्रों को मिलने वाली शैक्षणिक तथा प्रायोगिक सुविधाएँ अधिकतर उत्तम कोटि की होती हैं। उच्च शिक्षण में ही कुछ संस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिनका

उद्देश्य केवल धनोपार्जन करना है, न कि गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करना। ऐसी शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली, शैक्षणिक स्तर, छात्रों को मिलने वाली सुविधाएँ, तथा अध्यापकों की आर्थिक दशा के आधार पर जो तस्वीर उभरती है, उससे निजी शिक्षण संस्थाओं की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाता है। ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में स्थापित निजी शिक्षण संस्थाओं में से कुछ तो ऐसी हैं, जो उच्च तथा व्यवसायिक शिक्षा के नाम पर उपाधि बेचने का काम करती हैं। उन्हें उपाधि बेचने की दुकान कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। यह एक विचारणीय प्रश्न है, कि क्या ऐसे शिक्षण संस्थान जो शिक्षा के नाम पर व्यापार करते हैं, उनसे समाज या राष्ट्र का कोई हित हो पा रहा है? इन्हीं बिंदुओं पर विचार केंद्रित कर समाज तथा राष्ट्र के नीति निर्धारकों के साथ जनसामान्य का ध्यान स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली तथा व्यवस्था की ओर आकर्षित करने का प्रयास इस लेख के माध्यम से किया गया है।

### उच्च शिक्षा से आशय

उच्च शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है, उच्च या श्रेष्ठ शिक्षा अर्थात् सामान्य स्तर से ऊँची शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता है। प्रत्येक काल में उच्च शिक्षा का तात्पर्य तथा पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न था। वैदिक काल में प्राथमिक के पश्चात् अर्थात् गुरुकुलीय शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता था, किंतु पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न था। वर्तमान में उच्च शिक्षा का आशय महाविद्यालय तथा



विश्वविद्यालयी शिक्षा से लगाया जाता है। इस समय भारत में (10+2+3+2) की प्रणाली प्रचलित है, जिसमें (10+2) स्तर की शिक्षा को स्कूली शिक्षा तथा इसके बाद की शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता है। कला, विज्ञान, विधि, भाषा साहित्य, वाणिज्य आदि में स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियों को उच्च शिक्षा माना जाता है। तकनीकी, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, कम्प्यूटर तथा इलेक्ट्रॉनिकी पाठ्यक्रम की स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा को व्यवसायिक शिक्षा माना जाता है। ये भी उच्च शिक्षा के अंतर्गत आती हैं। क्योंकि इनकी उपाधि देने का कार्य विश्वविद्यालय द्वारा किया जाता है। नर्सिंग, आईटीआई, पॉलिटेक्निक इत्यादि तकनीकी पाठ्यक्रम को उच्च शिक्षा में न मानकर तृतीय शिक्षा के अंतर्गत माना जाता है।

### भारत में उच्च शिक्षा का विकास

भारत में उच्च शिक्षा कोई नई बात नहीं है, प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने की जिज्ञासा तथा व्यवस्था थी। उच्च शिक्षा का प्रारंभ वैदिक काल से माना जा सकता है, किंतु उस समय इसका स्वरूप भिन्न था। वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा के बाद की गुरुकुलीय शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता था, इसकी अवधि सामान्यतः 12 वर्ष होती थी।

बौद्ध काल में भी प्राथमिक शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। इसकी अवधि वैदिक काल के समान ही 12 वर्ष थी, किंतु पाठ्यक्रम विस्तृत था। मुस्लिम शिक्षा में

उच्च शिक्षा 8 वर्ष की थी, और इसका पाठ्यक्रम वैदिक काल एवं बौद्ध काल से भिन्न था। यूरोपीय इसाई मिशनरियों द्वारा भी प्राथमिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा हेतु कई शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। जिसमें जेसट कॉलेज (Jasiut College) और सेंट ऐनी कॉलेज (St. Anne College) प्रमुख हैं। परंतु इनमें शिक्षा का स्वरूप आधुनिक उच्च शिक्षा से भिन्न था। आधुनिक उच्च शिक्षा की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सन् 1781 में कलकत्ता में कलकत्ता मदरसा की स्थापना से मानी जाती है। इनमें मुस्लिम उच्च शिक्षा के साथ इंग्लैंड उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम चलाए गए थे। सन् 1791 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा स्थापित बनारस कॉलेज में हिंदू उच्च शिक्षा तथा इंग्लैण्ड के उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम साथ-साथ चलाए गए थे।

सन् 1800 में इंग्लैंड की उच्च शिक्षा प्रणाली पर आधारित विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना 1857 में की गई थी। चैन्नई, मुंबई तथा कोलकाता में लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर उच्च शिक्षा के विकास के लिए विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। सन् 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा मैसूर विश्वविद्यालय, 1917 में पटना विश्वविद्यालय, 1918 में उस्मानिया विश्वविद्यालय तथा 1920 में ढाका विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। समय-समय पर कई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कुल 22 विश्वविद्यालय थे,

जिसमे बैटवारे के समय 19 भारत में रहे तथा 3 पाकिस्तान में चले गए।

| क्रम संख्या | वर्ष    | वि. वि. की संख्या | समा. तथा व्यवसायिक महाविद्यालयों की संख्या |
|-------------|---------|-------------------|--|
| 1.          | 1881-82 | 4                 | 68   |
| 2.          | 1901-02 | 5                 | 179  |
| 3.          | 1921-22 | 12                | 207  |
| 4.          | 1936-37 | 17                | 366  |
| 5.          | 1946-47 | 19                | 452  |
| 6.          | 1950-51 | 27                | 843  |
| 7.          | 1960-61 | 45                | 1410                                       |
| 8.          | 1970-71 | 100               | 2953                                       |
| 9.          | 1980-81 | 132               | 4265                                       |
| 10.         | 1990-91 | 184               | 6140                                       |
| 11.         | 2001-02 | 291               | 12345                                      |

### स्व-वित्तपोषण की अवधारणा

स्व-वित्तपोषण की अवधारणा है कि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करे वही उसका मूल्य अदा करे। अर्थात् स्व-वित्तपोषित संस्थान अपने संसाधनों से शिक्षण व्यवस्था करें। कहने का आशय यह है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों से ही आवश्यकतानुसार विभिन्न शुल्क प्राप्त किए जाएँ। एकत्रित की गई राशि से शिक्षण संबंधी गतिविधियों की व्यवस्था स्व-वित्तपोषित संस्थाओं में की जाती है। इस अवधारणा के तहत शिक्षण उपयोगी

सहायक सामग्री, पुस्तकालय प्रायोगिक उपकरण, शिक्षा ग्रहण कर रहे छात्रों से लिए जा रहे शुल्कों के माध्यम से जुटाए जाते हैं।

### स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थान

ऐसे शिक्षण संस्थान जिनका संचालन किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह या संगठन द्वारा किया जाता है और उसकी वित्तीय व्यवस्था उस संस्थान के संचालक द्वारा की जाती है, जो उस संस्थान में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से विभिन्न शुल्कों के रूप में वसूला जाता है, स्व-वित्तपोषित संस्थान कहलाते हैं। इन संस्थाओं को विभिन्न स्तर की कक्षाओं तथा विषयों के संचालन हेतु शासन की मान्यताप्राप्त संस्थाओं द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। इन संस्थाओं को शासन द्वारा कोई अनुदान राशि शैक्षणिक व्यवस्था हेतु नहीं दी जाती है। ये संस्थाएँ शासन के नियमानुसार अपनी बुनियादी संगठनात्मक संरचनाएं विकसित करती हैं। शासन एवं विश्वविद्यालय के नियमानुसार शिक्षक की व्यवस्था कर निर्धारित नियमों के अनुरूप छात्रों को प्रवेश देकर अध्ययन-अध्यापन की सुविधा उपलब्ध कराते हैं।

### स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की अवधारणा के कारण

प्राचीन समय में जब शिक्षा की व्यवस्था निजी व्यक्तियों तथा सामाजिक और धार्मिक संगठनों के द्वारा की जाती थी, तब इसे सभी के लिए सुलभ करा पाना असंभव था। परिणामतः शिक्षा

की व्यवस्था का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर डाला गया किंतु जब राज्य सरकारें भी सभी व्यक्तियों को गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराने में असमर्थ दिखाई पड़ने लगीं तब शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल कर लिए जाने से शिक्षा व्यवस्था का उत्तरदायित्व केंद्र तथा राज्य सरकार दोनों पर आ गया। केंद्र तथा राज्य सरकारें मिलकर भी शिक्षा के प्रति अपने उत्तरदायित्व को सही ढंग से पूरा नहीं कर पा रहीं थीं। तो निजी संस्थाओं/स्व-वित्तपोषित संस्थाओं का सहयोग लेना विवशता हो गई। शिक्षा के क्षेत्र में स्व-वित्तपोषित संस्थाओं के सहयोग लेने के कई कारण हैं। उनमें से प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. राज्य तथा केंद्र सरकारों की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण आवश्यकतानुसार सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था करने में असमर्थ होना।
2. उच्च शिक्षण संस्थानों के संचालन में अत्यधिक व्यय भार का पड़ना।
3. जनसामान्य तक शिक्षा पहुँचाने के लिए अर्थात् सभी इच्छुक व्यक्तियों को उच्च शिक्षा सुविधा मुहैया उपलब्ध कराने के लिए।
4. सुव्यस्थित तथा सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थानों की उपलब्धा को बढ़ाना।
5. उच्च शिक्षा की व्यवस्था विकास खण्ड तथा तहसील स्तर पर उपलब्ध कराना।
6. महिलाओं में शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए गांव के पास ही उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना।

### स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थाओं का योगदान:

स्ववित्त पोषित संस्थाओं के अस्तित्व में आने का एक लाभ यह हुआ कि शासकीय शिक्षण संस्थाओं में छात्रों के प्रवेश का दबाव कम हुआ है। उच्च शिक्षा के इच्छुक ऐसे छात्र /छात्राएँ जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, उन्होंने इन संस्थाओं में प्रवेश लेना आरंभ किया। वर्तमान में स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाएँ कला, वाणिज्य तथा विज्ञान संकाय की स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा के क्षेत्र में सुविधायुक्त शिक्षण केंद्र उपलब्ध कराकर समाज तथा राष्ट्र के विकास में अपना योगदान कर रहीं हैं।

ऐसा कहा जाता है कि स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में पर्याप्त कक्षाओं हेतु कमरे, पुस्तकालय, प्रायोगिक उपकरण, योग्य प्रतिभा संपन्न शिक्षकों की व्यवस्था होती है। यहाँ गुणात्मक उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है। कुछ संस्थाएँ राष्ट्रीय/राज्य स्तर पर ख्यातिप्राप्त हैं। कुछ शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा के बाद रोजगार प्रदान करने के लिए प्लेसमेंट योजना संचालित है। ऐसी भी स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाएँ हैं जिनकी अंतिम वर्ष की परीक्षा से पूर्व ही कुछ व्यवसायिक कंपनियाँ काउंसलिंग कर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् विद्यार्थियों को रोजगार के लिए अपने यहाँ आने का आग्रह करती हैं। स्व-वित्तपोषित संस्थाओं के योगदान को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। ये संस्थाएँ उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर समाज तथा राष्ट्र को शिक्षित तथा व्यवसायिक कुशलता से परिपूर्ण मानव

संसाधन उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहीं हैं। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के प्रमुख योगदान निम्नानुसार हैं-

1. शासकीय शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों के उच्च शिक्षा में प्रवेश के दबाव को कम करने में मदद कर रहीं हैं।
2. आर्थिक दृष्टि से संपन्न वर्ग के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान कर रहीं हैं।
3. ये विद्यार्थियों को सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थान उपलब्ध कराते हैं। इनकी अधिसंरचना उच्च कोटि की होती है।
4. ये संस्थाएँ सभी को शिक्षा प्रदान करने के कार्य में शासन का सहयोग कर समाज तथा राष्ट्र के विकास में उपयोगी भूमिका अदा कर रहीं हैं।

#### **स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की समस्याएँ**

जब शिक्षा के क्षेत्र में निजी व्यक्ति या संगठनों के आने का उद्देश्य सेवा भाव से सभी पात्र व इच्छुक व्यक्तियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना था, तब तक निजी शिक्षण संस्थाओं में कोई समस्या नहीं थी आर्थिक दृष्टि से संपन्न वर्ग शिक्षा संस्थानों को मुक्त हाथों से दान करने, मुफ्त शिक्षा तथा स्वास्थ्य की व्यवस्था करने के कार्यों का अपना पुनीत कार्य समझ कर करते थे। वर्तमान समाज के बदलते आर्थिक मानदंड के कारण आज नैतिक आदर्शों तथा मूल्यों के आधार पर कार्य करने वाले व्यक्ति पिछड़े ही दिखाई पड़ते हैं। आजकल अधिकांश व्यक्तियों का उद्देश्य

प्रत्येक कार्य से आर्थिक लाभ प्राप्त करना होता है। शिक्षा के क्षेत्र में आने वाले अधिकांश निजी शिक्षण संस्थान, संचालक या संगठन धनोपार्जन के उद्देश्य से ही आते हैं, जिससे उनकी कार्यप्रणाली में पारदर्शिता नहीं होती जिसके कारण स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में कई समस्याएँ आती हैं, उनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं -

1. शिक्षण संस्थान हेतु भवन निर्माण तथा व्यवस्था के संचालन दोनों में ही अत्यधिक व्ययभार पड़ता है, जिसकी व्यवस्था संचालक को स्वयं करनी पड़ती है।
2. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की अधिसंरचना एवं शैक्षणिक व्यवस्था निर्धारित मापदण्ड के अनुरूप होने पर भी मान्यता प्रदान करने के कार्य से जुड़े अधिकांश कर्मचारी एवं अधिकारी बिना भेंट लिए मान्यता प्रदान करने की कार्यवाही नहीं करते हैं।
3. कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ अधिक धनोपार्जन के लालच में ऐसे छात्रों को ऐसे विषयों में प्रवेश दे देती हैं, जिनके संचालन की मान्यता संस्थान को नहीं होती। फलतः संचालक को साथ-साथ विद्यार्थी भी परेशान होते हैं।
4. प्रवेश के समय अपात्र विद्यार्थियों को प्रवेश देने का दबाव पड़ता है, तथा परीक्षा के समय नकल कराने का वाह्य दबाव भी संस्थान के ऊपर बनाया जाता है।

#### **स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के कारण उत्पन्न समस्याएँ**

प्राथमिक से लेकर सीनियर सेकेण्डरी तक की शिक्षा अर्थात् स्कूली शिक्षा हेतु स्व-वित्तपोषित

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता देने पर कोई विशेष समस्या नहीं हुई किंतु उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के लिए जब स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान की गई तो कई समस्याएँ उत्पन्न हुईं। स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की स्थापना व संचालन के लिए समुचित दिशा निर्देश व नियम बनाए गए हैं, किंतु अधिकांश संस्थाओं द्वारा अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने इन संस्थाओं को अपनी स्थापना के मूल उद्देश्य से भटका दिया है। अधिकांशतः देखा गया है कि इन संस्थाओं के संचालकों द्वारा विश्वविद्यालय के नियमों और दिशानिर्देशों का उल्लंघन किया जाता है। तथा ऐसे शिक्षण संस्थाओं को मान्यताप्राप्त हो जाती है जिनके पास उपयुक्त मूलभूत सुविधाएँ नहीं होती। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के नियमों का सही ढंग से पालन नहीं किया जाता तथा कभी-कभी अपात्र लोगों को भी प्रवेश दे दिया जाता है।

इन संस्थाओं को परीक्षा केंद्र बनाने पर परीक्षाओं की सूचना सुनिश्चित कर पाना कठिन कार्य होता है, स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के कारण कई तरह की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उनमें से प्रमुख निम्नानुसार हैं—

1. इनके द्वारा लिए जाने वाला शुल्क अत्यधिक है, फलतः शिक्षा आर्थिक दृष्टि से सामान्य वर्ग की पहुँच से बाहर होती जा रही है।
2. कुछ शिक्षण संस्थाएँ विश्वविद्यालय के अधिकारियों, कर्मचारियों तथा राजनीतिज्ञों के प्रभाव का उपयोग करके बिना आवश्यक

सुविधा के ही मान्यता प्राप्त कर लेती हैं। आवश्यक सुविधा व संसाधनों के अभाव में गुणात्मक शिक्षा नहीं हो पाती है।

3. इस प्रकार की अधिकांश शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों से अधिक कार्य लिया जाता है तथा वेतन कम दिया जाता है। फलतः शिक्षक रुचि के साथ पूर्ण मनोयोग से अध्यापन कार्य नहीं करते हैं। जिससे अध्यापन कार्य प्रभावित होता है।
4. ऐसी संस्थाओं में नियुक्त किए गए शिक्षकों छः से आठ माह ही रखकर उनसे अध्यापन कार्य कराया जाता है तथा ऐसे शिक्षक रखे जाते हैं, जिनका शैक्षणिक स्तर निर्धारित मानक के अनुसार नहीं होता है। जिसकी वजह से विद्यार्थी को स्तर के अनुरूप शिक्षा नहीं मिल पाती है।
5. ऐसी शिक्षण संस्थाओं में से कुछ संस्थाएँ भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष योगदान करती हैं। उच्च शुल्क देकर प्रवेश प्राप्त करने वाला छात्र पढ़ने में कम रुचि लेता है। वह अन्य विकल्पों या अनुचित तरीके से आगे बढ़ना चाहता है। यदि इन्हें नौकरी मिल गई तो इनका उद्देश्य समाज सेवा करना नहीं होता बल्कि किसी भी तरीके से दिये गए पैसे की भरपाई करना इनका प्रमुख लक्ष्य होता है, जिससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
6. कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ नकल कराकर या अन्य तरीकों से उपाधि दिलवाने का कार्य करती हैं, परिणामस्वरूप यहाँ से उत्तीर्ण

- छात्रों को रोज़गार ढूँढने में परेशानी होती हैं, क्योंकि इनकी योग्यताओं का मूल्य कम करके आंका जाता है।
7. ऐसी संस्थाएँ जो अपात्र छात्रों को कैपीटेशन फीस के आधार पर प्रवेश दे देती हैं, बाद में विश्वविद्यालय द्वारा इनका प्रवेश अमान्य कर दिये जाने पर विद्यार्थियों का आर्थिक नुकसान होने के साथ एक शैक्षणिक सत्र बेकार हो जाता है।
8. ऐसी संस्थाओं की मान्यता यदि समाप्त हो जाती है तो वहाँ के कर्मचारी की सेवा भी समाप्त हो जाती है, जिससे कर्मचारियों को आर्थिक तथा मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

### स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं द्वारा आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु कुछ सुझाव

वर्तमान समय में उच्च शिक्षा की बढ़ती हुई मांग के कारण इन संस्थाओं का सहयोग लेना आवश्यक है। आवश्यकता केवल विसंगतियों को दूर करने की है। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के ऊपर प्रमुख आरोप यह लगाया जाता है कि ये विद्यार्थियों तथा शिक्षकों का आर्थिक शोषण कर मानसिक अस्थिरता पैदा करती हैं, साथ ही कुछ शिक्षण संस्थाओं के द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता स्तर के अनुरूप नहीं होती है।

शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था मापदंड के अनुरूप नहीं होती। इन संस्थाओं द्वारा विद्यार्थियों को प्रवेश देने की पद्धति पर भी समय-समय

पर सवालिया निशान लगते रहते हैं। यदि इन सभी लगने वाले आरोपों के निवारण के लिए सार्थक पहल की जाए तो स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थानों की अवधारणा उपयोगी साबित हो सकेगी। निम्नलिखित उपाय कर इन संस्थाओं की उपादेयता को सुनिश्चित किया जा सकता है—

1. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश चयन परीक्षा के आधार पर ही किया जाना चाहिए। प्रबंधकीय कोटे के अंतर्गत प्रवेश चाहने वालों की अलग चयन सूची बनाई जा सकती है। उनका शुल्क भी अलग से निर्धारित किया जा सकता है, किंतु प्रवेश चयन परीक्षा के आधार पर ही होना चाहिए।
2. प्रवेश परीक्षा के लिए भरे जाने वाले आवेदन पत्र के साथ विवरण प्राप्ति का उल्लेख कराया जाना चाहिए। जिसमें वर्ष भर लगने वाली पूरी फीस के साथ इस बात का भी उल्लेख होना चाहिए कि किस शिक्षण संस्थान के सामान्य तथा प्रबंधकीय कोटे की फीस कितनी होगी।
3. स्व-वित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने संबंधी नियमों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।
4. शिक्षण संस्थाओं के लिए पाठ्यक्रम की मान्यता संबंधी समस्त औपचारिकताएँ प्रवेश प्रारम्भ करने के एक वर्ष पूर्व ही पूर्ण कर लेनी चाहिए।
5. यदि किसी वजह से किसी विषय की मान्यता समाप्त करना शिक्षा सत्र के बीच

- में अपरिहार्य हो तो उससे छात्रों का नुकसान नहीं होना चाहिए। उन छात्रों की परीक्षाएँ किसी अन्य मान्यताप्राप्त संस्थान या शासकीय संस्थाओं के माध्यम से आयोजित कराई जानी चाहिए।
6. सरकार स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की कुल आय-व्यय का आकलन करे तथा उसके आधार पर विद्यार्थियों से लिए जाने वाले शुल्क का निर्धारण किया।
  7. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के मेधावी तथा निर्धन छात्रों के लिए अलग से सीटों का निर्धारण होना चाहिए तथा इनके अध्ययन में आने वाले व्यय भार का 75% भाग सरकार को वहन करना चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जानी चाहिए।
  8. इन संस्थाओं में नियुक्त किए जाने वाले शिक्षकों की नियुक्ति चयन परीक्षा के आधार पर होनी चाहिए तथा शिक्षकों को पर्याप्त कारण के बगैर सेवा से पृथक नहीं किया जाना चाहिए।
  9. ऐसे शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों को वही सुविधाएँ तथा वेतन मिलना चाहिए जो शासकीय तथा अनुदानित संस्थाओं के कर्मचारियों को प्रदान किया जाता है।
  10. प्रबंधकों की आपसी सहमति तथा शिक्षकों की सहमति से प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात् शिक्षकों का स्थानान्तरण किया जाना चाहिए।
  11. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को परीक्षा केंद्र बनाए जाने की स्थिति में यदि वहाँ सामूहिक नकल का प्रकरण पाया जाता है तो वहाँ आगामी 5 वर्ष तक परीक्षा केंद्र नहीं बनाया जाना चाहिए।
  12. प्रत्येक तीन वर्ष में शिक्षण संस्थानों में उपलब्ध सुविधाओं तथा अन्य निर्धारित मापदण्डों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण होना चाहिए तथा मापदण्ड पूरा न होने पर मान्यता खत्म कर देनी चाहिए तथा वहाँ कार्यरत कर्मचारियों को अन्य शिक्षण संस्थाओं से जहाँ आवश्यक हो संबद्ध किया जाना चाहिए।

### निष्कर्ष

किसी कार्य को प्रारंभ करने का कोई न कोई सकारात्मक उद्देश्य अवश्य रहता है तथा कार्य का परिणाम कार्य करने के ढंग पर निर्भर करता है। अधिकांश कार्य लाभ की दृष्टि से ही प्रारम्भ किए जाते हैं किन्तु जब कार्य का उद्देश्य बदल जाता है तो उसमें हानि लगती है। समाज या राष्ट्र के हित में जो कार्य प्रारंभ किए जाते हैं, उनका लाभ यदि समाज के सभी वर्गों को न मिलकर केवल व्यक्ति विशेष को मिलने लगता है, तो उनकी प्रासंगिता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाता है। यही बात स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं पर लागू होती है। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को उच्च शिक्षा हेतु मान्यता प्रदान की गई परंतु इसका उपयोग कुछ शिक्षण संस्थाओं ने अपने लाभ के लिए करना शुरू कर दिया फलतः समाज व राष्ट्र को वांछित लाभ के स्थान पर हानि प्रतीत होने लगी। इसलिए इस पर विचार



करना पड़ रहा है कि क्या शिक्षा में स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थान की अवधारण गलत है? परंतु कुछ निजी शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली की वजह से सभी निजी शिक्षण संस्थाओं के बारे में धारणा पालना न्याय संगत नहीं होगा। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले बड़े पैमाने पर ऐसी शिक्षण संस्थाओं की संरचना व कार्य प्रणाली का सूक्ष्मता से अध्ययन करना होगा।

### सुझाव

महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कई बार अपने भाषणों में इसका उल्लेख किया है कि हम सबको मिलकर भारत को 2020 तक विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में लाना है। यह उपलब्धि तभी हासिल हो सकती है जब उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा का विकास हो। उच्च शिक्षा अधिकांश लोगों के लिए सुलभ हो इसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार समाज के सक्षम व्यक्ति तथा संगठन आपस में मिलकर प्रयास करें। आज आवश्यकता इस बात की है कि उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के कार्य में संलग्न स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं से संबंधित सभी पहलुओं की विवेचना कर उनकी कार्य प्रणाली तथा व्यवस्था का आकलन

किया जाए तदानुसार उचित निर्णय लेकर इन शिक्षण संस्थाओं की उपयोगिता समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकतानुसार बनाए रखने के लिए कठोर कदम उठाए जाने चाहिए। शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने के नियम कठोर हों तथा उनका सख्ती से पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इन शिक्षण संस्थाओं की नियमित जाँच हो तथा ऐसी संस्थाओं की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिए जिसमें आवश्यक संसाधन तथा योग्य शिक्षक उपलब्ध न हों।

निजी शिक्षण संस्थाओं को उपाधि विक्रय केंद्र में बदलने का प्रयास करना चाहिए। इन शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली इस तरह सुनिश्चित की जानी चाहिए कि शिक्षकों तथा छात्रों का आर्थिक तथा मानसिक शोषण न हो। बल्कि शिक्षण कार्य हेतु उपयुक्त वातावरण का निर्माण हो जिसमें शिक्षा की प्रक्रिया प्रभावी हो सके और उसका लाभ समाज तथा राष्ट्र को पूर्ण रूप से मिल सके।

वर्तमान में आवश्यकता यह है कि स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता को सही मायने में परखें। इनके उद्देश्यों प्रयोजनों को समझें और उसके अनुरूप सही दिशा में कार्य को अंजाम देकर इस व्यवस्था को उपयोगी बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।





### संदर्भ

1. अग्रवाल सुभाष चंद्र एवं दीक्षित पवन शंकर 2005. अध्यापक प्रशिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर चिंता के प्रभाव का अध्ययन, प्राइमरी शिक्षक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली अंक जनवरी 2005. पृष्ठ 16-20
2. कुटारिया सुरेंद्र 2003. उच्च शिक्षा की उपादेयता एवं गुणवत्ता, परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान नीपा नई दिल्ली, अंक दिसंबर 2003. पृष्ठ 91-96
3. लाल रमन बिहारी 2004. भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

## प्राथमिक विद्यालयों में छात्र-अध्यापक अनुपात

भगवतशरण बुड़ाकोटी\*

---

शिक्षा की प्रक्रिया में विद्यार्थी की केंद्रीय भूमिका है इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विद्यालय में कम से कम कितने शिक्षक हों? एक शिक्षक कितने विद्यार्थियों को पढ़ाए? यह गम्भीर चिंतन व मनन का विषय है। हमारे प्राथमिक विद्यालयों में वास्तविक परिस्थितियाँ क्या बताती हैं और प्राथमिक स्तर पर अध्यापक संख्या क्या हो ताकि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया सुचारू रूप से चल सके, इन्हीं मुद्दों पर अपने विचार प्रकट किए हैं उक्त शिक्षक ने इस लेख में।

---

जहाँ कहीं शिक्षा की चर्चा होती है तो सैद्धांतिक रूप से तीन बिंदुओं की बात की जाती है—शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी। इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने वालों के लिए शिक्षा जितनी महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान करने वाला अर्थात् शिक्षक भी। यह तो रहा सैद्धांतिक सत्य किंतु प्रश्न यह है कि विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या कितनी हो? इस विषय पर गंभीर चिंतन, मनन एवं मंथन की आवश्यकता है। समय-समय पर इसके नाम पर भारी भरकम धनराशि व्यय करके गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं और उनके प्रचार-प्रसार में भी अपार धनराशि व्यय की जाती है। किंतु अभी तक

कोई तर्कसंगत नीति निर्धारित नहीं हो पायी है।

प्रायः तीन तरह की बातें देखने-सुनने को मिलती हैं। प्रथम कि अध्यापकों की संख्या कक्षाओं की संख्या के अनुरूप होनी चाहिए, द्वितीय कि प्रति चालीस छात्रों पर एक अध्यापक और तृतीय कि प्रति पच्चीस छात्रों पर एक अध्यापक नियुक्त होना चाहिए। सैद्धांतिक रूप से ही इस मामले में सार्वभौमिकता का नितांत अभाव है। व्यवहारिक रूप में तो स्थिति नितांत शोचनीय व दयनीय है। नीति निर्धारण में साम्य का बिलकुल ही लोप हुआ प्रतीत होता है।

कई विद्यालय में मात्र आठ या दस की छात्र संख्या पर चार-चार अध्यापक कार्यरत हैं तो

---

\*सहायक अध्यापक, ग्राम चरगाड, पो. श्री कोट (वाया पोखड़ा), पौड़ी गढ़वाल 246169

अधिकांश विद्यालयों में छात्रों की संख्या शताधिक होने पर भी एकमात्र अध्यापक नियुक्त है। विषम भौगोलिक स्थिति वाले विद्यालयों में तो किसी अध्यापक महोदय का पूरे समय तक टिक पाना अवतार की श्रेणी प्राप्त करने जैसा है। सुविधाजनक स्थानों वाले विद्यालयों में अध्यापक का अतिरिक्त 'जमावड़ा मरुस्थल्यां यथा वृष्टि की उक्ति के नितांत विपरीत है। दूरस्थ स्थानों के विद्यालयों में बड़ी मुश्किल से प्रथम नियुक्ति या पदोन्नति के फलस्वरूप किसी अध्यापक के आ जाने की खुशी मात्र कार्यभार ग्रहण की तिथि तक ही सीमित रहती है। कार्यभार ग्रहण करने के उपरांत व्यवस्थापूर्वक पुनः आने की बात कहकर जब अध्यापक महोदय जाते हैं तो बाद में उनके किसी ऐसे सुविधाजनक विद्यालय में स्थानांतरण की सूचना मिलती है जहाँ पहले ही मानकों से अधिक अध्यापक कार्यरत हैं। साथ ही यह भी विदित होता है कि उक्त अध्यापक का वेतन कार्यरत विद्यालय से नहीं वरन् नियुक्ति वाले विद्यालय के नाम से आहरित हो रहा है। इससे अभावग्रस्त विद्यालय में नयी नियुक्ति का मार्ग भी अवरुद्ध होता है। इस प्रकार एक विद्यालय के अध्यापकों का अतिरिक्त जमावड़ा और दूसरे विद्यालय का कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो जाता है। इस अतिरिक्त जमावड़े एवं कृत्रिम अभाव से तो शासन एवं अध्यापकों की नैतिकता ही लड़ सकती है। अन्यथा यह रोग लाइलाज हो चुका है। एक ही विद्यालय हेतु कई अध्यापकों के स्थानान्तरण प्रार्थना पत्रों पर संस्तुति देना शायद जनप्रतिनिधियों की मजबूरी में शामिल हो चुका है। मूल बात कि अध्यापकों की संख्या कितनी हो, इस चिंतन पर निर्भर करती है कि

एक अध्यापक एक दिन में कितना समय बच्चों को दे सकता है और बच्चा कितने समय तक झेल सकता है? एक प्रकरण विशेष को मात्र एक ही विधि से आत्मसात् कराया जाना असम्भव एवं अव्यवहारिक है। इसके लिए संबंधित प्रकरण अलग-अलग विधियों से प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। विधियों में परिवर्तन जहाँ छात्र को आनन्दित करता है वहीं प्रकरण को सूक्ष्मता से आत्मसात् करने में भी सहायक सिद्ध होता है। किन्तु एकल अध्यापकीय व्यवस्था वाले विद्यालयों में यह बात कैसे लागू हो सकती है? क्योंकि अध्यापक महोदय को यह भी याद रखना है कि चार अन्य कक्षाएं भी उनका इंतजार कर रहीं हैं। सभी कक्षाओं को एक साथ बैठाकर पढ़ाया जाना भी व्यवहारिक नहीं है। क्योंकि पाँचों कक्षाओं में अध्ययनरत शिक्षार्थी स्वाभाविक रूप से अलग-अलग शारीरिक एवं मानसिक योग्यता वाले हैं। तृतीयतः अन्य विभागीय एवं राष्ट्रीय कार्यों के संपादन हेतु भी समय की आवश्यकता है।

वस्तुतः अध्यापकों की संख्या छात्रों की संख्या पर नहीं वरन् कक्षाओं अथवा विषयों के अनुरूप होनी चाहिए। वर्तमान में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में विषयों की संख्या समान है किन्तु उच्च प्राथमिक विद्यालयों में जहाँ कम से कम तीन और अधिक से अधिक पांच शिक्षकों का मानक है प्राथमिक विद्यालयों में कहीं दो और कहीं एकमात्र अध्यापक ही कार्यरत है। ऐसी स्थिति में शिक्षण कार्य कितना प्रभावी हो सकता है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। भय का वातावरण उत्पन्न करके बच्चों को कुछ मूलभूत बातें

रटायी तो जा सकती हैं किंतु यह तो बच्चों के विकास के बजाय विनाश का ही कार्य अधिक करेगा।

शासन के पास कक्षाओं या विषयों के अनुरूप अध्यापकों की नियुक्ति न कर सकने के पक्ष में इसके व्यवसाध्य होने का तर्क तो मौजूद है किंतु दूसरी ओर छोटे से छोटे गांव में जहाँ की आबादी अत्यंत न्यून है प्राथमिक विद्यालयों का खुलना आवश्यकता-सी हो गयी है। यद्यपि उत्तराखंड सरीखे पहाड़ी राज्य की विषम भौगोलिक परिस्थिति में प्राथमिक विद्यालयी स्तर के बच्चे का दूर जा पाना सम्भव नहीं है किंतु चार-पाँच निकटवर्ती गाँवों के मध्य में एक प्राथमिक विद्यालय स्थापित कर पर्याप्त संख्या में अध्यापकों की व्यवस्था की जा सकती है। अदूरदर्शिता के कारण खोले गए ऐसे विद्यालय पर्याप्त छात्र संख्या न जुटा पाने के कारण आज बन्द होने की कगार पर हैं। विगत दिनों दस से कम संख्या वाले विद्यालयों को बन्द करने संबंधी बात अभी तक भी अमल में नहीं आ पायी है। इन विद्यालयों का अस्तित्व बरकरार रखने हेतु एक ओर जहाँ फर्जी छात्र संख्या का सहारा लिया जा रहा है वहीं दूसरी ओर राजनीति का सहारा लेकर विद्यालयों को टूटने से बचाए जाने के प्रयास किए जा रहे हैं कई गाँवों में जातीय समीकरण इतने प्रबल हैं कि एक ही गाँव में दो विद्यालय दो जातियों के नाम पर आधारित खोले गए हैं। भले ही दोनों को अलग-अलग नाम दिये गए हैं किंतु स्थानीय लोगों की जुबान पर जातिसूचक नाम ही प्रचलित है। विद्या के जिस मंदिर की नींव इतने घृणित और तुच्छ विचार पर आधारित हो, उस मंदिर में कैसे देवता निवास

करते होंगे और वहाँ किस प्रकार की पूजा होती होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इस भावना ने प्रत्यक्ष रूप से अध्यापकों की संख्या को अवश्य ही प्रभावित किया है। दो विद्यालयों की स्थापना की मांग के बजाय एक ही विद्यालय में वांछित अध्यापक संख्या की मांग की जा सकती थी। जिससे शिक्षण कार्य सुव्यवस्थित रूप से चल सकता था। विषम भौगोलिक परिस्थिति के कारण एकाधिक ग्रामों को एक ग्रामसभा के अंतर्गत शामिल किया जाना मजबूरी है। इस प्रकार की ग्रामसभाओं में विद्यालयों की स्थापना हेतु स्थान चयन सबके लिए समान समीपता के सिद्धांत को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि अधिसंख्यक लोगों की बात के सिद्धांत पर किया जाता है। जिसमें अधिक जनसंख्या वाले गांव बाजी मार लेते हैं क्योंकि लोकतंत्र की राजनीति संख्या बल पर आधारित है। यह बात कम जनसंख्या वाले ग्रामवासियों को अपनी प्रतिष्ठा पर चोट स्वरूप महसूस होती है और यहीं से उत्पन्न होती है एक नये विद्यालय की स्थापना की मांग। वोट बैंक के इस युग में इस मांग का पूर्ण हो जाना असम्भव भी नहीं है।

स्पष्ट है कि विद्यालयों में तब तक शिक्षण कार्य भली भाँति सम्पन्न नहीं हो सकता जब तक कि वहाँ वांछित संख्या में अध्यापकों की व्यवस्था न की जाए। इसके लिए जनता तथा शासन दोनों को ही क्षुद्र विचारों से ऊपर उठकर मन से शिक्षा के लिए समर्पित होना आवश्यक है। विद्यालयों की स्थापना ऐसे केंद्रीय स्थलों पर की जाय जहाँ अधिसंख्यक छात्र पहुंच सकें, साथ ही संसाधनों व अध्यापकों की संख्या भी पर्याप्त हो।

# वैकल्पिक शिक्षा की दुविधा

शंकर शरण\*

---

भारत में औपरिवेशिक शिक्षा या मैकॉलेवादी शिक्षा को लेकर असंतोष और बहस बड़ी पुरानी है। जहाँ राष्ट्रवादी मनीषियों ने इसे समूल त्याग कर राष्ट्रीय शिक्षा की स्थापना करने की आवश्यकता पर बल दिया, वहीं अनेक बुद्धिजीवियों और नीतिकारों ने उसी शिक्षा के सकारात्मक पहलुओं की आवश्यकता पहचानने को रेखांकित किया। यह बहस आज किस स्थिति में है, प्रस्तुत निबंध में इसकी झलक मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी स्थिति की आलोचना करना जितना सरल होता है उसका उपयुक्त विकल्प तैयार करना उतना ही कठिन। फलतः जो संभ्रम और दुविधा वैकल्पिक शिक्षा का प्रयास करने वालों में आ जाती है, यह उसका एक आकलन है।

---

भारत में वर्तमान शिक्षा-पद्धति में सभी असंतुष्ट हैं। किंतु क्या इसका कोई सार्थक, कारगर और स्वीकार्य विकल्प है? इस का उत्तर भारी ऊहा-पोह से ग्रस्त है। 12-14 जून 2007 तक बोधिग्राम, मसूरी में सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड डवलपमेंट ऑफ हिमालयाज 'सिद्ध' द्वारा 'शिक्षा आधुनिकता और विकास' विषय पर आयोजित संगोष्ठी से कुछ यही निष्कर्ष झलका। इस संगोष्ठी में देश भर से अनेक शिक्षा-शास्त्री, शिक्षाकर्मी, शिक्षक तथा अत्यंत अनुभवी और सम्मानित स्वयंसेवी भी शामिल हुए। इन गणमान्य भागीदारों में

सुप्रसिद्ध तिब्बती और एसोसिएशन ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीइज के पूर्व अध्यक्ष प्रो. सामधोंग रिनपोछे, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के निदेशक प्रो. कृष्ण कुमार, राष्ट्रीय ओपन स्कूल संस्थान के अध्यक्ष प्रो. एम.जी. पंत, सुप्रसिद्ध गाँधीवादी कार्यकर्त्री राधा बहन, झारखंड की पुरस्कृत शिक्षाकर्मी डॉ. विजयम कर्था, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन की प्रो. गीता अय्यन, आदि शामिल थे। आधुनिक विकास की बिडंबनाओं और शिक्षा की चुनौतियों पर गंभीरता से विचार करने वाले लगभग सभी लोग मानते

---

\*प्रवक्ता, डी.ई.आर.पी.पी. एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

हैं कि आज की शिक्षा सार्वजनिक कल्याण की चिंता कम करती है, निजी उन्नति की लालसा और प्रेरणा अधिक देती है।

किंतु समस्या यहीं तक सीमित नहीं है। यह शिक्षा लोगों में वैयक्तिक रूप से सुखी होने की चाह तो बढ़ाती है, किंतु उसका कोई सुसंगत मार्ग दिखाने में नितांत विफल रहती है। इसलिए सभी लोग दुविधा में हैं। वे भी जो पारंपरिक आधुनिक या अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को चला रहे हैं, और वे भी जो इसके स्थान पर किसी विकल्प की खोज में लगे हुए हैं। साथ ही, यह दुविधा जितनी वैकल्पिक शिक्षा की तलाश करने वालों में है, उतनी ही उन स्थानीय ग्रामवासियों को भी जो वर्तमान स्कूली शिक्षा से असंतुष्ट हैं।

मसूरी क्षेत्र में गाँव के लोग अनौपचारिक विचार-विमर्श में 'सिद्ध' के संचालकों से कहते हैं, "क्या शिक्षा है तुम्हारी! वह तो गाँव के लोगों को शहर में, और शहर के लोगों को विदेश में फिट करने का काम करती है। हमारे गाँवों का क्या होगा?" वे मानते हैं कि चालू स्कूली शिक्षा प्रायः लड़कों को निकम्मा, व्यर्थ का अहंकारी बना देती है। वह 'न घर के, न घाट' के रहते हैं। अपने समाज और तरीकों से कटते जाते हैं। वैसे लड़के खेती-बारी जैसे पारंपरिक काम में हाथ तो बँटाते नहीं, बस जेब में हाथ डाले घूमते रहते हैं। उलटे अपने गरीब, अशिक्षित माता-पिता से सीधे मुँह बात करना भी बंद कर देते हैं। यह विडंबना गाँव के लोग रोज स्वयं देखते, भोगते हैं। फिर भी वही ग्रामवासी

उसी स्कूली शिक्षा से मुँह मोड़ नहीं पाते। उल्टे, उनके बच्चों को विशेषकर अंग्रेजी की शिक्षा अवश्य मिले, इसकी चाह रखते हैं।

आधुनिकता और विकास से झुँझलाहट, फिर भी उसी की चाह – यही द्वंद्व इस संगोष्ठी का मूल विषय था जिसे समापन सत्र में 'सिद्ध' के निदेशक पवन कुमार गुप्ता ने सशक्त रूप से रखा। वस्तुतः गोष्ठी के विषय 'शिक्षा, आधुनिकता और विकास' का संदर्भ समापन सत्र में ही पूरी तरह स्पष्ट हुआ। अनुराधा जोशी ने स्थानीय ग्रामीण महिलाओं के साथ लंबे आदान-प्रदान, और प्रत्यक्ष शोध के आधार पर उनका द्वंद्व पहचाना है। अपना कर्म-मार्ग स्पष्ट समझ पाने का द्वंद्व। विशेषकर स्कूल और संयुक्त परिवार संबंधी। महिलाएं स्कूल चाहती भी हैं, पर उसके परिणामों से असंतुष्ट भी हैं। क्योंकि यह उनके बच्चों को पाखंडी, अशिष्ट मिथ्याचारी बना देता है।

इसी प्रकार, गाँवों में आज भी प्रचलित संयुक्त परिवार महिलाओं को अधिक सुविधा, समृद्धि, अवकाश और सुरक्षा देता है। विविध अवलोकनों में पाया गया कि एकल परिवार में रहने वाली महिलाओं की तुलना में संयुक्त परिवार में रहने वाली महिलाएँ कम कठिनाइयाँ महसूस करती हैं फिर भी 25-50 के आयु-वर्ग की अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ भी अपने एक स्वतंत्र घर का सपना देखती हैं। इस प्रकार आधुनिकताजन्य स्वतंत्रता का आकर्षण एक ऐसा 'मनेर का लड्डू' है, जिसे खाने, न खाने के द्वंद्व में सभी दुविधाग्रस्त हैं। हमारे नीतिकार,

शिक्षाशास्त्री, साधारण जनता तथा वैकल्पिक शिक्षा की खोज में लगे लोग भी।

‘सिद्ध’ के एक शिक्षक का यह कहना उसी द्वंद्व का उदाहरण है कि आज हृदय से शिक्षक का काम करने वाले नहीं मिलते। वैकल्पिक शिक्षा के प्रयत्न में यह एक बड़ी बाधा है। युवक-युवतियाँ नौकरी के रूप में पढ़ाना स्वीकार करते हैं, वैसे प्रयत्नों से उन्हें सहानुभूति प्रायः मौखिक ही रहती है। जैसे ही उनके सामने कोई अधिक लाभकारी काम उपस्थित होता है, वे फौरन उधर बढ़ जाते हैं। गाँव के लोगों की सेवा, उनका उत्थान जैसे आदर्श तुरंत दम तोड़ देते हैं। इस तरह वास्तव में कोई आदर्शवादी शिक्षक मिल पाना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है।

फिर वैकल्पिक शिक्षा संगठन के बढ़ने से अन्य समस्याएँ भी खड़ी होती हैं। यह वही समस्याएँ हैं जो पश्चिमी तौर-तरीकों पर आधारित किसी भी संगठन के विस्तार और विकास के साथ स्वभावतः उत्पन्न होती हैं, और दुनिया में इसका कोई उपाय नहीं ढूँढा जा सका है। संगठन में आदर्शवाद का घटना और व्यवहारिकता का बढ़ना, अपने पद और सुविधाओं का ऐसा आदी हो जाना कि अधिक योग्य व्यक्ति को भी समुचित स्थान न देना, नेताओं में ‘इंद्र-भय’ पैदा हो जाना, आदि। इस प्रकार, चाहे कितने भी अच्छे उद्देश्य से संगठन क्यों न बना हो, सफलता और समय के साथ उसमें सत्ता, सुविधा और पद-सोपान की सामान्य समस्याएँ खड़ी हो ही जाती हैं। इससे कार्यकर्ताओं में अवांछित भाव

उत्पन्न होने लगते हैं। संगठन और उसके संचालकों की आलोचनाएँ, आक्षेप सुनाई पड़ने लगते हैं। यह सब उसी आधुनिकता और विकास के आकर्षणों का ही रूप है, जिससे संघर्ष करने के लिए वैकल्पिक शिक्षा के प्रयत्न आरंभ होते हैं। इसके साथ-साथ वैकल्पिक शिक्षा का प्रयत्न करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं को अनुदान देने वाली देशी-विदेशी एजेंसियों की अपनी राजनीति, पसंद-नापसंद, आग्रह-दुराग्रह आदि भी कार्य और योजनाओं को प्रभावित करते हैं। क्या तब “काम छोड़ दें, और बैठ जाएं, या प्रयत्न जारी रखें?” पवन जी पूछते हैं। इसका उत्तर सरल नहीं है।

अमेरिकी कॉर्नेल विश्वविद्यालय की शोध-छात्रा करुणा मुरारका ने स्थानीय लड़कियों से बातचीत में पाया कि उनका दृष्टिकोण लड़कों से भिन्न है। लड़के मात्र नौकरी के लिए पढ़ना चाहते हैं। किंतु लड़कियाँ नौकरी मिले या न मिले, इससे निरपेक्ष होकर भी स्कूली पढ़ाई करना चाहती हैं। वह समझती हैं कि जब तक पढ़ाई चलेगी उन्हें विवाह के बाँधे जाने और गृहस्थी की चक्की में जाने से मोहलत मिली रहेगी। फिर शायद पढ़ लेने से विवाह भी कुछ अच्छी जगह हो सकता है, आदि। इस प्रकार ग्रामीण लड़कियों में भी आधुनिकता के प्रति दुविधा है। वे आधुनिक जीवन-पद्धति की अशुभ बातों के प्रति भी अवगत हैं। शहरी जीवन में किसी साधारण गृहस्थ की कठिनाइयाँ, समस्याएँ और खतरे उससे बहुत भिन्न होते हैं जो ग्रामीण परिवेश में होते हैं। जो व्यक्ति गाँव छोड़ शहर

में नौकरी या मज़दूरी करने चला जाता है। उसकी और उसके परिवार की वैसी बहुतेरी सुरक्षाएं छिन जाती हैं, जो गाँव में सहज उपलब्ध रही हैं। लड़कियाँ यह समझती हैं, फिर भी उस शहरी जीवन की चाहना से दूर नहीं रह पातीं जो वर्तमान स्कूली शिक्षा धीरे-धीरे सब में अवश्यमेव पैदा कर देती है।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर. टी.) के निदेशक प्रो. कृष्ण कुमार ने इस समस्या पर अपनी दृष्टि से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि आधुनिक शिक्षा औपनिवेशिक शिक्षा ही है। क्योंकि यही हमें विरासत में मिली हुई है। हम ने इसे उसी तरह सहज मान लिया है जैसे मछली अपने गिर्द पानी को सहज मानती है। उसके बारे में नहीं सोचती। पर उनके विचार में मुख्य समस्या औपनिवेशिक शिक्षा नहीं, बल्कि औपनिवेशिक राज्य है। इसीलिए हमारी अनेक कठिनाइयों के मूल में राज्य और समाज का द्वंद्व है, जिसे हम दुःखपूर्वक झेलते हैं। शिक्षा के दुश्चक्र में बच्चों का बचपन बहिष्कृत हो गया है, उनका सारा समय स्कूल के भारी काम छिन लेते हैं। किंतु इन समस्याओं को पहचाना जा रहा है और इनसे निपटने के लिए अच्छे प्रयास भी हो रहे हैं। विशेषकर दो वर्ष पहले बनी नई स्कूली पाठ्यचर्या बनने और लागू होने के बाद से यह बहस हो रही है, कि ज्ञान क्या है, कौन इसका निर्माण करता है? मूल समस्या ऐसे ज्ञान का वितरण, विकिरण है जिसने समाज से जन्म नहीं लिया।

सुप्रसिद्ध तिब्बती विद्वान प्रो. सामधोंग रिनपोछे का उदघाटन वक्तव्य भी अत्यंत मूल्यवान था। वे भारतवर्ष की 'सात हजार वर्ष पुरानी शिक्षा-परंपरा' के प्रतिनिधि के रूप में बोले। उन की बातें किसी को भी विचार करने के लिए विवश करती हैं। बौद्ध चिंतन के आधार पर प्रो. रिनपोछे ने शील, समाधि और प्रज्ञा के योग को शिक्षा का वास्तविक अर्थ बताया। फिर इनका अलग-अलग, सारगर्भित, किंतु सरल विवेचन किया। उन्होंने कहा कि यहाँ आज भी शिक्षा की सही समझ है, जिसके कारण ही भारतवर्ष ने अपना अस्तित्व नहीं खोया। बल्कि दुनिया को भी कुछ न कुछ आज भी दे रहा है। उन्होंने कहा कि साइंस उपयोगी हो सकता है, किंतु विद्या वह नहीं है। मान्यताओं से आरंभ कर, इन्द्रिय-जनित प्रयोगों के माध्यम से वह कभी कुछ पा लेता है। फिर इसी क्रम में वह अपनी पिछली स्थिति को अनंतर खंडित भी कर देता है। अतः उसके द्वारा प्राप्त जानकारी सांयोगिक और संदिग्ध रहती है। इसीलिए उसे कई बार बहुत जल्दी-जल्दी संशोधित भी करना पड़ता है। आधुनिक साइंस द्वारा खोजी गई दवाओं की स्थिति से इसे समझा जा सकता है जिन्हें प्रायः कुछ समय बीतने के बाद हानिकारक बताकर प्रतिबंधित ही कर दिया जाता है। इसीलिए साइंस द्वारा प्राप्त चीज उपयोगी हो सकती है, किंतु उसे विज्ञान या विद्या जैसी मूल्यवान संज्ञा नहीं दी जानी चाहिए। विद्या हजारों वर्षों तक संशोधित नहीं होती क्योंकि वह प्रमाणिक, अनुभूत, भावमय ज्ञान है। वहाँ ज्ञेय और ज्ञाता का मिलन हो जाता है।



प्रो. रिनपोछे के अनुसार विभिन्न धर्मों ने इतना अंधविश्वास नहीं फैलाया, जितना साइंस ने फैलाया है। धर्मों का अंधविश्वास तो चिंतन, अवलोकन और अनुभव से टूट भी जाता है, पर साइंस का नहीं टूटता। यह नहीं कि साइंस कोई घटिया या अनुपयोगी चीज है, किंतु स्पष्ट रहे कि उसका विनाशकारी अवदान अधिक है। इसी तरह, पीएचडी, डी.लिट् आदि तक पहुँचकर भी आधुनिक शिक्षा सदाचार, करुणा आदि सदगुणों में कोई वृद्धि नहीं करती। जबकि भारतीय परंपरा में प्रज्ञा का जागरण ही शिक्षा है जिससे उक्त गुणों में वृद्धि होती है। प्रख्यात समाजशास्त्री ए.के. सरन को उद्धृत करते हुए उन्होंने 'नयापन, आत्म-केंद्रिकता और हिंसा' को ही आधुनिकता का सार बताया। लोभ, काम और भोग के तीन उन्मादों में गाँधीजी का पश्चिमी सभ्यता का मूल्यांकन – 'शैतानी सभ्यता' – जोड़ दें तो प्रो. रिनपोछे के विचार से, आधुनिकता का अर्थ पूरा हो जाता है।

संगोष्ठी में गाँधीजी की बुनियादी तालीम का भी बार-बार स्मरण हुआ। राधा बहन (भट्ट) ने पहाड़ों पर उसी प्रेरणा से चल रहे कार्यों और बदलते समय की चुनौतियों का उल्लेख किया। उन्होंने इस पर ध्यान आकृष्ट किया कि स्कूलों में परीक्षा-प्रणाली तथा किसी भी नौकरी के लिए डिग्री या प्रमाण-पत्र की आवश्यकता एक बड़ी बाधा है। यह बाधा वैकल्पिक शिक्षा के प्रयासों को समय के साथ लोकप्रिय बना देती है। यदि यह बाधा दूर हो सके, तो वैकल्पिक विद्यालयों की सहज वृद्धि हो सकती है। तब

लोग वैकल्पिक विद्यालयों को वास्तव में विकल्प के रूप में देख सकेंगे।

सेवाग्राम से आए शिवदत्त जी ने वर्धा में बुनियादी तालीम आधारित विद्यालय को पुनर्जीवित करने के प्रयास का विवरण दिया। अपनी जीवन्त वक्तृता से संगोष्ठी में उपस्थित सभी लोगों का हृदय छूने में सफल रहे। आधुनिक शिक्षा, राजनीतिक तंत्र, अफसरशाही और आम जन-जीवन से जुड़ी उनकी विसंगतियों का उन्होंने मनोरंजक चित्र खींचा। संगोष्ठी में जाने-माने लेखक नंदकिशोर आचार्य, झारखंड प्रांत में लंबे समय से कार्यरत पुरस्कृत शिक्षा-कर्मी डॉ. विजयम कर्था तथा 'पानी वाले बाबा' के रूप में विख्यात समाजशास्त्री अरुण कुमार की प्रस्तुतियाँ भी प्रभावशाली रही। अन्य महत्वपूर्ण भागीदारी में जीवन विद्या आंदोलन के रण सिंह आर्य, राष्ट्रीय ओपन स्कूल संस्थान के अध्यक्ष प्रो. एम.सी. पंत, सूचना प्रौद्योगिकी के प्रतिनिधि राजीव सांगल, कृष्णमूर्ति स्कूल की पूर्व प्रधानाचार्या प्रो. गीता अय्यन, वैज्ञानिक प्रो. नवज्योति सिंह, पत्रकार श्री राजन वेंकटेश आदि थे।

सम्मेलन में इस पर भी ध्यान आकृष्ट किया गया कि भारत के समकालीन शिक्षा-चिंतकों श्री अरविंद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, धर्मपाल आदि के विश्लेषणों, अनुशांसाओं का गंभीर अध्ययन करना चाहिए। इन महान चिंतकों और कर्मयोगियों को आज पुराने जमाने की चीज माना जाने लगा है, जिनके विचारों के बारे में प्रायः यह नकारात्मक टिप्पणी होती है, 'उनकी बातें सुनने में तो अच्छी लगती हैं, ठीक भी

प्रतीत होती हैं; किंतु वह आज व्यावहारिक नहीं हैं। यह एक भ्रामक धारणा है। क्योंकि जिस समय उन महापुरुषों ने अपने सुचिंतित विचार रखे थे, तब भी उनपर यही आपत्ति की जाती थी। अतः वास्तविकता तो यह है कि उन विचारों पर जो आपत्ति की जाती है, उसी संदर्भ में श्री अरविंद या कवि रवीन्द्र ने वे विचार प्रस्तुत किए थे। इस प्रकार, सच तो यह है कि उन्होंने जिन समस्याओं के संदर्भ में अपना चिंतन और कर्म रखा था वह वहीं समस्याएँ हैं जिनसे हम आज भी उलझ रहे हैं। केवल उन समस्याओं का रूप थोड़ा बदल गया है। इसलिए उन मनीषियों के विचारों को बिना सोचे-समझे अव्यवहारिक मान लेना बड़ी भारी भूल है।

संगोष्ठी में बच्चों को सिखाते हुए स्वयं सीखने के अनुभवों की भी चर्चा हुई। उन्हें ध्यान से, धैर्य से सुनने का महत्व रेखांकित किया गया। कुछेक प्रतिभागियों द्वारा कोरी भावुकता भरी, सुनी-सुनाई, नाटकीय-सी बातें भी कही गईं। उसमें अपने किसी प्रत्यक्ष अनुभव, गंभीर अवलोकन या सतर्क चिंतन के स्थान पर किन्हीं 'बेचारे' गरीब ग्रामीणों का उद्धार करने की उच्च-वर्गीय दयालुता, साधारण लोगों से दूरी, खुली-छिपी अंग्रेजियत अथवा एक रोमांटिक प्रयोग की युवा-सुलभ सुखानुभूति अधिक झलकती थी। ऐसे प्रतिभागी, विषय कुछ हो, एक ही बात बोलते थे। किताबी सी बातें जिसे सुनकर विश्वास की अनुभूति नहीं होती।

किंतु 'सिद्ध' के निदेशक पवन कुमार गुप्ता पूरी संगोष्ठी में हुई बातों पर, उठाए गए सभी

बिंदुओं पर सजग दिखे। समापन सत्र में उनकी विस्तृत प्रस्तुति में फँसे होने की पीड़ा स्पष्ट थी। जिसे उन्होंने स्वयं संज्ञा दी: 'आधुनिकता और विकास की फँसावट'। उन्होंने माना कि जो अंग्रेजियत से लड़ने चले थे, उन वैकल्पिक शिक्षा की बात करने वाले स्कूलों में भी पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी हो गया है। प्रायः परिस्थितियों के दबाव से। भारतीय लोगों पर अभी भी विदेशी श्रेष्ठता का भूत हावी है। संभवतः इसीलिए वैकल्पिक विद्यालयों में कोई मामूली विदेशी भी कभी पढ़ाने या भाषण देने आ जाता है तो उसे बड़ी बात समझा जाता है। जबकि कोई अत्यंत महत्वपूर्ण भारतीय भी आए तो कुछ अंतर नहीं पड़ता। अर्थात् वही चिरपरिचित ढलान। विदेशी लोगों, विचारों, संस्थाओं, माध्यमों और भाषाओं को अधिक उन्नत, समृद्ध मानकर अपने को उन्हीं के अनुरूप बनाने की प्रवृत्ति हमारे बड़े, छोटे सभी लोगों में है जिसका प्रभाव अंततः विकल्प की तलाश करने वाले लोगों पर भी पड़े बिना नहीं रहता।

फिर भी पवन जी के अनुसार 'सिद्ध' प्रयोग कर रहा है, न समाधान तक पहुँचा है, न ही पूरी तरह अँधेरे में ही है। उसने अनुभवों से सीखा है। आगे रास्ता टटोल रहा है। उस पर विफलता का अन्य आक्षेप नहीं लगाना चाहिए। पीठ पीछे निंदा करने वाले लोग भीरू हैं, जो न तो स्पष्ट बात करते हैं, न समस्याओं से उलझना चाहते हैं। उनमें इस फँसावट को स्वीकार करने का साहस नहीं, इसलिए मात्र निंदा कर अपने कर्तव्य की इति समझते हैं। देश भर में ऐसे

बौद्धिक भरे हैं जो जहाँ बोलना चाहिए, वहाँ तो डरकर चुप रहते हैं। मुँह-देखी, चापलूसी या खाना-पूरी करते हैं। पवन जी के अनुसार हम सब 'छोटे पंडित नेहरू' हैं। दूसरों की नकल करते हैं, अपना कुछ नहीं। "सुविधा-संग्रह की गुलामी में हम सब फँसे पड़े हैं। टेक्नोलॉजी और व्यवस्था की गुलामी में। किंतु हम सब का लक्ष्य स्वतंत्रता है।" इसलिए प्रश्न तो अवश्य उठने चाहिए, किंतु उनका आग्रह है: मन में उठे सच्चे प्रश्न ही सामने रखने चाहिए और वैकल्पिक शिक्षा के प्रयत्न करने वालों के प्रति थोड़ी सहानुभूति भी रहनी चाहिए।

वैकल्पिक शिक्षा के प्रयोग में ऐसे लोगों के सहयोग की अपेक्षा की जाती है जिन्हें भारतीय परंपरा की चेतना, आधुनिकता की समझ और सत्यनिष्ठा हो। इन तीन मूलाधारों पर वैकल्पिक शिक्षा के उपाय में देश भर से सहयोगी जुटाने के प्रयत्न सफल हो सकते हैं। किंतु समस्या यह है कि अनेक धारणाएं गड्ड-मड्ड हो गई हैं। आज स्वतंत्रता और फ्रीडम, सुख और सुविधा,

जानना और समझना जैसे दो भिन्न अर्थ वाले शब्द एक बना दिए गए हैं। इन्हें अलग करना नितांत आवश्यक है। प्रो. रिनपोछे ने इस पर तीखे ढंग से ऊँगली रखी, "शिक्षा और एजुकेशन एक चीज नहीं है। साइंस और विज्ञान एक ही बात नहीं है। आज शब्दों का अपहरण हो गया है। हमने अपने शब्दों की अनमोल अवधारणाओं को त्याग कर उसमें पश्चिमी शब्दों के अर्थ डाल दिए गए हैं।" यह एक भयंकर दुर्घटना हुई है, जिससे प्रायः हम समस्या ही नहीं समझ पाते।

प्रो. रिनपोछे का ज्ञान और अनुभव वैकल्पिक शिक्षा के ऐसे प्रयत्नों की पुष्टि करता है, "संपूर्ण व्यवस्था परिवर्तन की बात निरर्थक है। स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे प्रयोगों से ही कुछ परिणाम आएगा।" वह उपाय की ओर बढ़ने का गूढ़ संकेत भी देते हैं, "धारा के विरुद्ध न चलिए। नदी से हट जाइए और अपने मार्ग पर चलिए।" क्या इस संकेत से वैकल्पिक शिक्षा की दिशा मिलेगी? समय ही बताएगा।



## अंत में

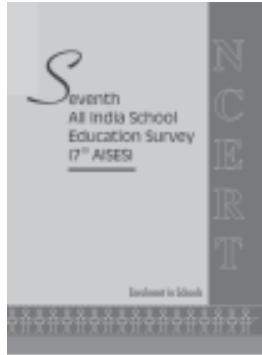
परिषद् द्वारा हाल में आयोजित एक भाषण में प्रोफ़ेसर शांता सिन्हा ने कहा कि गरीबों के लिए बच्चों को विद्यालय भेजना एक युद्ध से कम नहीं होता। जन्म और निवास के संतोषजनक प्रमाणपत्रों, आदि के साथ आखिरी तारीख से पहले प्रवेश के लिए फार्म भर देना जैसी जरूरी शर्तें हर माता-पिता को पहली कक्षा में अपना बच्चा दाखिल कराते समय पूरी करनी होती हैं। ग्रामीण जन तथा छोटे शहरों और महानगरों में आकर बसे लोगों के लिए इन शर्तों को पूरा करना काफ़ी दुश्वार होता है। लेकिन असली लड़ाई तब शुरू होती है जब बच्चा पहली कक्षा में जाने लगता है। एम.वी. फाउंडेशन की संस्थापक - निदेशक के रूप में अपने काम के दौरान मिले अनुभवों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रोफ़ेसर शांता सिन्हा ने बताया कि पहली कक्षा के बच्चों को भावनात्मक संबल और प्रोत्साहन की कितनी कमी महसूस होती होगी।

गाँव के कई स्कूल तो सिर्फ़ दो अध्यापकों से ही काम चलाते हैं और आमतौर पर अपना ध्यान चौथी और पाँचवीं कक्षा पर ही केंद्रित रखते हैं, यानी वे पहली कक्षा को-जो स्कूल की सबसे बड़ी कक्षा होती है-बच्चों के भरोसे छोड़ देते हैं। यही कक्षा अगले वर्ष घिस-पिटकर दूसरी कक्षा के रूप में छोटी हो जाती है। पहली व दूसरी कक्षाओं में पढ़ाने वाले बहुत कम अध्यापकों में वैसा आत्मगौरव और भविष्यदृष्टा होने का भाव मिलता है जो 5-6 वर्ष की उम्र के बच्चों के साथ काम करने के लिए बहुत जरूरी है। हमारे देश में पहली व दूसरी कक्षा में शामिल की जाने वाली बहुत-सी पाठ्यपुस्तकें सोच और कल्पना के उन तरीकों का प्रतिबिंबन नहीं करतीं जिन्हें छोटे बच्चे स्वाभाविक रूप से जानते हैं। प्रधानाध्यापकों व अन्य अधिकारियों के मन में आमतौर से यह भावना छाई रहती है कि पहली कक्षा तो आगे की तैयारी का समय है। अपने आप में इस कक्षा का कोई महत्व नहीं है। लेकिन शिक्षाशास्त्र के सिद्धांत इसके ठीक विपरीत बात करते हैं। उनके अनुसार पहली कक्षा ही एक सामाजिक संस्था के रूप में विद्यालय के प्रति बच्चे के बुनियादी रवैये को आकार देती है। स्कूल में बीतने वाले आरंभिक महीने बच्चों के इस संकल्प को पक्का बनाने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं कि वे विद्यालय को एक संजीदगी के साथ, एक भली जगह के रूप में स्वीकार करेंगे।

स्वभाव और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की दृष्टि से छोटे बच्चों और बड़े छात्रों में फर्क न कर पाना एक बड़ी व्यवस्थागत कमजोरी है जो पहली कक्षा के सुधार के रास्ते में एक बड़ी बाधा को पेश करती है। कई शिक्षित अध्यापक किशोर छात्रों की सामान्य मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को मौखिक सुना सकते हैं, लेकिन इस बात का व्यावहारिक ज्ञान बहुत कम अध्यापकों में मिलता है कि पाँच साल का बच्चा किस तरह सोचता और कल्पना करता है। प्राथमिक स्तर के लिए अध्यापक प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या प्रायः इतनी सपाट होती है कि प्रशिक्षण पूरा कर लेने पर भी अध्यापक को स्कूल में प्रवेश लेने वाले बच्चों की कोमल मानसिक दशा का अंदाज नहीं होता। ज्यादातर अध्यापक बाल विकास के रूढ़ चरणों की अपनी अस्पष्ट जानकारी से ही काम चलाते हैं। उन्हें यह जानकारी नहीं होती कि एक वास्तविक बच्चे के साथ कैसे व्यवहार किया जाए। इसके लिए हम पहली कक्षा के उन अध्यापकों को दोष नहीं दे सकते जो अपने आपको स्कूली व्यवस्था के पदक्रम में सबसे नीचे समझते हैं और आगे भी ऐसा ही समझने की उम्मीद रखते हैं।

(एन.सी.ई.आर.टी. समाचार, जनवरी 2007 से साभार प्रकाशित)

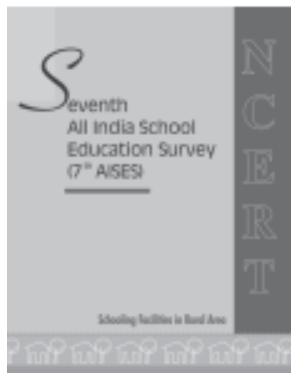
कृष्ण कुमार  
निदेशक  
एन.सी.ई.आर.टी.



**Seventh All India School Education Survey (7th AISES)**  
Enrolment in Schools  
Rs 250 Pages 386



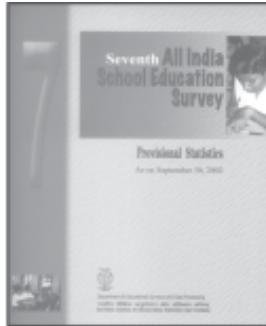
**Seventh All India School Education Survey (7th AISES)**  
Media of Instruction and Languages Taught  
Rs 135 Pages 200



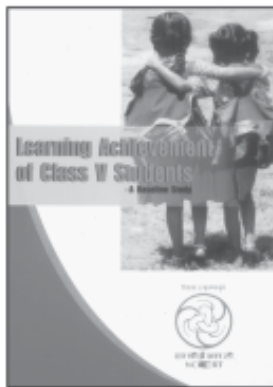
**Seventh All India School Education Survey (7th AISES)**  
Schooling Facilities in Rural Area  
Rs 165 Pages 238

---

अधिक जानकारी के लिए कृपया [www.ncert.nic.in](http://www.ncert.nic.in) देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पत्तों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क कीजिए।



**Seventh All India  
School Education Survey**  
*Provisional Statistics*  
As on September 30, 2002  
Rs.195.00/210pp



**Learning Achievement of  
Class V Students**  
- A Baseline Study  
Rs.1165.00/795pp



**Sixth Survey of Educational Research**  
1993-2000  
Volume I  
Rs.225.00/299pp

---

For further enquiries, please visit [www.ncert.nic.in](http://www.ncert.nic.in) or contact the Business Managers at the addresses of the regional centres given on the copyright page.

## NCERT JOURNALS

| Sl. No. | Title   | Single Copy | Annual Subscription |
|---------|---|-------------|---------------------|
| 1.      | <b>School Science</b><br>A Quarterly Journal for<br>Secondary Schools                 | Rs. 6.50    | 26.00               |
|         |   | US \$ 2.00  | 7.80                |
|         |   | UK £ 0.70   | 2.60                |
| 2.      | <b>Indian Educational Review</b><br>A Half-Yearly Research Journal                    | Rs. 29.00   | 58.00               |
|         |   | US \$ 8.70  | 17.40               |
|         |   | UK £ 2.90   | 5.80                |
| 3.      | <b>Journal of Indian Education</b><br>A Quarterly Journal of Education                | Rs. 9.00    | 36.00               |
|         |   | US \$ 2.70  | 10.80               |
|         |   | UK £ 0.90   | 3.60                |
| 4.      | <b>भारतीय आधुनिक शिक्षा</b><br>हिंदी भाषा की त्रैमासिक पत्रिका                        | Rs. 8.50    | 34.00               |
|         |   | US \$ 2.60  | 10.20               |
|         |   | UK £ 0.90   | 3.40                |
| 5.      | <b>The Primary Teacher</b><br>A Quarterly Journal for<br>Primary Teachers             | Rs. 5.00    | 20.00               |
|         |   | US \$ 1.50  | 6.00                |
|         |   | UK £ 0.50   | 2.00                |
| 6.      | <b>प्राइमरी शिक्षक</b><br>प्राइमरी शिक्षकों के लिए<br>हिंदी भाषा की त्रैमासिक पत्रिका | Rs. 4.00    | 16.00               |
|         |   | US \$ 1.20  | 4.80                |
|         |   | UK £ 0.40   | 1.60                |
| 7.      | <b>Journal of Value Education</b><br>(A Half-yearly Journal)                          | Rs. 40.00   | 80.00               |
|         |   | US \$ 12.00 | 24.00               |
|         |   | UK £ 4.00   | 8.00                |
| 8.      | <b>Indian Educational Abstracts</b><br>(A Half-yearly Journal)                        | Rs. 50.00   | 100.00              |
|         |   | US \$ 15.00 | 30.00               |
|         |   | UK £ 5.00   | 10.00               |

एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं की सदस्यता हेतु शिक्षाविदों, संस्थाओं, शोधछात्रों, अध्यापकों और विद्यार्थियों से अनुरोध है कि वे अधिक जानकारी के लिए कृपया निम्न पते पर संपर्क करें :

### मुख्य व्यापार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, एनसीईआरटी  
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016